भारतीय समाज में विवाह

विवाह एक सामाजिक-सांस्कृतिक संस्था है। यह वह आधार स्तम्भ है जिसके द्वारा मानव का अस्तित्व बना हुआ है। समाज की निरन्तरता का आधार सन्तान है तथा सन्तान की उत्पत्ति जन्म पर आधारित होती है। जन्म के लिए स्त्रियों व पुरुषों का लैंगिक (यौन) सम्बन्ध आवश्यक है। समाज द्वारा लैंगिक सम्बन्धों को कानून एवं प्रथाओं द्वारा नियमित करने के उद्देश्य से ही विवाह नामक संस्था का प्रादुर्भाव हुआ है। प्रत्येक समाज के सांस्कृतिक तथा सामाजिक नियमों का प्रभाव विवाह पर पड़ता है जिसके कारण इसके उद्देश्यों में भिन्नता होती है। उदाहरण के लिए, हिन्दू विवाह का प्रमुख उद्देश्य धर्म का पालन, सन्तानोत्पादन एवं यौन आकांक्षा की पूर्ति है। हिन्दू विवाह में धर्म को प्रधानता दी गई है, यौन तृप्ति को प्रधानता नहीं दी गई है। मुसलमानों में विवाह (निकाह) एक कानूनी संविदा है जिसका लक्ष्य पति-पत्नी के यौन सम्बन्धों तथा उनकी सन्तान के सम्बन्धों व उनके पारस्परिक अधिकारों तथा कर्त्तव्यों को वैधता प्रदान करना है। **मॉर्गन, मैलिनोव्स्की** आदि विचारकों ने विवाह को प्रमुख रूप से यौन सन्तुष्टि का आधार माना है। प्रस्तुत अध्याय में विवाह का अर्थ बताकर भारत के प्रमुख सम्प्रदायों में विवाह की संस्था को समझाने का प्रयास किया गया है।

विवाह का अर्थ एवं परिभाषाएँ
(Meaning and Definitions of Marriage)

विवाह समाज द्वारा स्वीकृत यौन-सम्बन्धों को नियमित करने से सम्बन्धित एक सामाजिक- सांस्कृतिक संस्था है जो विवाह के बन्धन में बँधने वाले स्त्री-पुरुष को पत्नी और पति की प्रस्थिति प्रदान करती हैं। प्रमुख विद्वानों ने विवाह की परिभाषाएँ निम्नलिखित प्रकार से दी हैं—

(1) **वेस्टरमार्क** (Westermarck) के अनुसार—''विवाह एक या अधिक पुरुषों का एक या अधिक स्त्रियों के साथ होने वाला यौन सम्बन्ध है जो प्रथा या कानून द्वारा मान्य होता है तथा जिसमें दोनों पक्षों तथा उनके बच्चों के अधिकारों तथा कर्त्तव्यों का समावेश होता है।''[1]

(2) **लॉवी** (Lowie) के अनुसार—''विवाह उन स्वीकृत संगठनों को व्यक्त करता है जो इन्द्रिय सम्बन्धी सन्तोष (यौन सन्तुष्टि) के अतिरिक्त भी स्थिर रहता है तथा पारिवारिक जीवन को आधार प्रदान करता है।''[2]

(3) **बोगार्डस** (Bogardus) के अनुसार—''विवाह स्त्री और पुरुष को पारिवारिक जीवन में प्रवेश कराने वाली संस्था है।''[3]

(4) **गिलिन** एवं **गिलिन** (Gillin and Gillin) के अनुसार—''विवाह एक प्रजनन मूलक परिवार की स्थापना का समाज द्वारा स्वीकृत तरीका है।''[4]

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट हो जाता है विवाह समाज द्वारा स्वीकृत एक सामाजिक संस्था है। यह दो विषमलिंगी व्यक्तियों को यौन सम्बन्ध स्थापित करने के अधिकार प्रदान करती है। विवाह सम्बन्ध बहुत ही

---

1. ''Marriage is a relation of one or more men to one or more women which is recognized by customs or laws, and involves certain rights and duties both in the case of the parties entering the union and in the case of the children born of it.'' —E. Westermarck, **The History of Human Marriage**, Vol. I, p. 26.

2. ''Marriage denotes those unequivocally sanctioned unions which persist beyond sexual satisfaction and thus come to understand family life.'' —R. H. Lowie, ''Marriage'' in **Encyclopaedia of the Social Sciences**, Vol. X, p. 146.

3. ''Marriage is an institution for admitting men and women to family life.'' —E. S. Bogardus, **Sociology**, p. 75.

4. ''Marriage is socially approved way of establishing a family of procreation.'' —J. L. Gillin and J. P. Gillin, **Cultural Sociology**, p. 134.

व्यापक होते हैं। इनमें एक-दूसरे के प्रति भावात्मक लगाव, प्रतिबद्धता, सेवा भाव, सहायता व एक-दूसरे को निरन्तर सहारा देना सम्मिलित है। विवाह के पश्चात् उत्पन्न सन्तान को ही वैध माना जाता है।

हिन्दू विवाह
[HINDU MARRIAGE]

हिन्दू विवाह एक धार्मिक संस्कार है। हिन्दू सामाजिक व्यवस्था में प्रारम्भ से ही विवाह का स्थान महत्त्वपूर्ण रहा है क्योंकि वैदिक युग से ही विवाह एक धार्मिक क्रिया के रूप में माना जाता रहा है। '**ऋग्वेद**' में कहा गया है कि विवाह का उद्देश्य गृहस्थी बनकर यज्ञों का सम्पादन करना तथा सन्तान उत्पन्न करना है। पश्चिमी विचारकों ने जहाँ विवाह का मुख्य उद्देश्य यौन तृप्ति माना है वहीं हिन्दू विवाह का मुख्य उद्देश्य धर्म का पालन करना है। हिन्दू विवाह में धर्म की प्रधानता होने के कारण आज भी उसमें स्थायित्व बना हुआ है। **पी० एच० प्रभु** (P. H. Prabhu) ने हिन्दू विवाह को एक धार्मिक संस्कार (कृत्य) कहा है जिसके द्वारा व्यक्ति गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता है अथवा करती है। इसे एक आदर्श माना जाता है तथा आदिकाल में भी कुछ विशेष परिस्थितियों में ही दूसरे विवाह की अनुमति प्रदान की गई थी। आज '**हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955**' द्वारा 'एक-विवाह' को हिन्दुओं में वैधानिक दृष्टि से अनिवार्य बना दिया गया है।

हिन्दू विवाह का अर्थ
(Meaning of Hindu Marriage)

के० एम० कपाडिया (K. M. Kapadia) ने भी हिन्दू विवाह को एक संस्कार (Sacrament) माना है। यह एक प्रमुख संस्कार है जिसके माध्यम से व्यक्तित्व को पूर्णता प्रदान होती है। उनके अनुसार, हिन्दू विवाह का उद्देश्य अपने धर्म का पालन करना, प्रजा (बच्चे पैदा करना) तथा रति (यौन सुख) हैं। प्राथमिक रूप से कर्त्तव्यों के पालन के कारण इसका सर्वोपरि व मौलिक उद्देश्य धर्म ही है। हिन्दू विवाह, वास्तव में, स्त्री और पुरुष का अटूट व शाश्वत मिलन है जिसके द्वारा वे गृहस्थाश्रम में प्रवेश करते हैं। इस पवित्र बन्धन को तोड़ना अस्वाभाविक है। अत: हिन्दू विवाह को एक ऐसा औपचारिक धार्मिक कृत्य माना गया है जिसके द्वारा एक व्यक्ति अपना गृहस्थ जीवन प्रारम्भ करता है तथा जीवन के अन्तिम लक्ष्य पुरुषार्थ की ओर अग्रसर होता है।

हिन्दू विवाह की विशेषताएँ
(Characteristics of Hindu Marriage)

हिन्दू विवाह की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

(1) एक धार्मिक संस्कार (A religious sacrament)—हिन्दू विवाह एक धार्मिक संस्कार है क्योंकि हिन्दू शास्त्रकारों के अनुसार विवाह केवल यौन सुख पूर्ति का ही साधन नहीं है अपितु जीवन की पूर्णता के लिए एवं मोक्ष प्राप्ति के लिए भी अनिवार्य है।

(2) एकविवाह (Monogamy)—हिन्दू विवाह की दूसरी प्रमुख विशेषता एकविवाह है और इसे प्रारम्भ से ही आदर्श विवाह माना गया है। हिन्दू शास्त्रकारों ने भी एक हिन्दू को दूसरा विवाह करने की अनुमति केवल विशेष परिस्थितियों में ही दी है। 'हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955' के द्वारा अब एकविवाह को हिन्दुओं में वैधानिक दृष्टि से अनिवार्य बना दिया गया है।

(3) अन्तर्विवाह (Endogamy)—हिन्दुओं में विवाह अन्तर्विवाही है अर्थात् प्रत्येक हिन्दू को अपनी ही जाति में विवाह करना पड़ता है।

(4) सगोत्र, सप्रवर तथा सपिण्ड बहिर्विवाह (Sgotra, spravar and spinda exogamy)—यद्यपि हिन्दुओं में अपनी ही जाति में विवाह करने (अन्तर्विवाह) की प्रथा रही है, फिर भी अपने गोत्र, प्रवर तथा पिण्ड में विवाह नहीं किया जाता। गोत्र से अभिप्राय समान पूर्वज की सन्तान हैं जबकि प्रवर से अभिप्राय समान पूर्वज या समान ऋषियों के नाम का उच्चारण करने वाले हैं। पिण्ड का अर्थ समान पिण्ड या शरीर रखने वाले हैं। हिन्दू विवाह अधिनियमानुसार माता की ओर से तीन पीढ़ियों और पिता की ओर से पाँच पीढ़ियों तक सपिण्डता मानी जाती है।

(5) विवाह की एक विशिष्ट विधि (Special procedure of marriage)—धार्मिक संस्था होने के नाते हिन्दुओं में विवाह की अपनी एक विशिष्ट विधि है। विवाह के लिए तीन कृत्य अनिवार्य माने गए हैं—होम,

पाणिग्रहण तथा सप्तपदी। ये कृत्य ब्राह्मण द्वारा पवित्र अग्नि को साक्षी मानकर वेद मन्त्रों द्वारा सम्पन्न किए जाते हैं। इन कृत्यों के बिना विवाह अधूरा है।

(6) विधवा पुनर्विवाह तथा विवाह-विच्छेद पर प्रतिबन्ध (Restriction on widow remarriage and divorce)—हिन्दुओं में विवाह को जन्म-जन्मान्तर का मिलन कहा गया है। यह एक ऐसा बन्धन है जिसे तोड़ना सरल नहीं है। हिन्दू स्त्री के लिए पति उसका देवता है तथा दूसरे पति को अपनाना अधर्म माना गया है। इन विचारों के कारण विधवा पुनर्विवाह एवं विवाह-विच्छेद पर परम्परागत रूप से प्रतिबन्ध रहा है। यद्यपि इन्हें अनेक सामाजिक विधानों द्वारा मान्यता प्रदान कर दी गई, परन्तु फिर भी इनका प्रचलन अधिक नहीं हो पाया है।

हिन्दू विवाह के उद्देश्य
(Aims of Hindu Marriage)

हिन्दू विवाह के तीन प्रमुख उद्देश्य अथवा आदर्श (Ideals) बताए गए हैं। ये निम्नलिखित हैं—

(1) धर्म (Dharma)—हिन्दुओं में विवाह का सबसे प्रमुख उद्देश्य अपने धार्मिक कर्त्तव्य का पालन करना है। सभी धार्मिक कार्यों के निष्पादन के लिए पति एवं पत्नी का एक साथ भाग लेना आवश्यक है। वेदों में इस बात का उल्लेख मिलता है कि एक हिन्दू को अपने धर्म का पालन अपनी पत्नी के साथ करना चाहिए। **'शतपथ ब्राह्मण'** ग्रन्थ के अनुसार, "पत्नी पति का आधा अंग है।" **याज्ञवल्क्य** ऋषि का विचार है कि, "एक पत्नी की मृत्यु के बाद, तुरन्त दूसरा विवाह कर लेना चाहिए जिससे धार्मिक क्रिया चलती रहे।" पाँच महायज्ञों (ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, भूतयज्ञ, पितृयज्ञ, मनुष्ययज्ञ) को करना परम आवश्यक है और सभी यज्ञ तभी सम्पादित हो सकते हैं, जब व्यक्ति विवाहित हो। रामचन्द्र जी अश्वमेध यज्ञ तब तक पूर्ण नहीं कर सके थे जब तक उन्होंने सीता की स्वर्ण प्रतिमा बनाकर अपने पास स्थापित नहीं कर ली। **कपाडिया** का कथन है कि जब हिन्दू विचारकों ने धर्म को विवाह का प्रथम तथा सर्वोच्च लक्ष्य माना व दूसरा स्थान सन्तानोत्पत्ति को दिया, तो स्वाभाविक है कि विवाह पर धर्म का आधिपत्य हो जाता है।

(2) प्रजा या सन्तान (Children)—हिन्दू विवाह का दूसरा उद्देश्य पितृ ऋण चुकाना है। हिन्दू धर्म के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को तीन प्रकार के ऋण चुकाने पड़ते हैं—(i) देव ऋण, (ii) ऋषि ऋण तथा (iii) पितृ ऋण। पितृ ऋण चुकाने के लिए पिता के वंश को आगे बढ़ाना अनिवार्य है अर्थात् पुत्र प्राप्ति अनिवार्य है क्योंकि पितरों के तर्पण और पिण्डदान के लिए पुत्र अति आवश्यक है। विवाह सन्तानोत्पत्ति की समाज द्वारा स्वीकृत प्रणाली है। वैसे **मनु** ने पुत्र प्राप्ति को विवाह का प्रथम उद्देश्य माना है। **'मनु-संहिता'** के अनुसार पुत्र वह है जो पिता को नरक से बचाए। अत: पुत्र की प्राप्ति विवाह का दूसरा प्रमुख उद्देश्य है।

(3) रति या आनन्द (Sexual enjoyment)—हिन्दू विवाह का तीसरा उद्देश्य रति या आनन्द है। विवाह यौन सन्तुष्टि अथवा काम वासना की पूर्ति का भी साधन है। यद्यपि यौन सन्तुष्टि हिन्दू विवाह का उद्देश्य माना गया है, परन्तु फिर भी धार्मिक संस्कार होने के नाते इसे सबसे निम्न अर्थात् तीसरा स्थान दिया गया है। हिन्दू विवाह में पहला और दूसरा उद्देश्य अधिक महत्त्वपूर्ण माना गया है। शास्त्रों में इस बात का उल्लेख मिलता है कि अगर कोई द्विज वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य) का व्यक्ति केवल रति के लिए विवाह करता है तो वह शूद्र के समान है।

हिन्दू विवाह एक धार्मिक संस्कार के रूप में
(Hindu Marriage as a Sacrament)

हिन्दू विवाह को एक धार्मिक कृत्य अथवा संस्कार कहा गया है। हिन्दुओं में विवाह यौन सन्तुष्टि का ही मार्ग नहीं है अपितु धर्म भी है जो व्यक्ति को उनके धार्मिक कर्म करने के लिए प्रेरित करता है। **पी० एच० प्रभु** का कहना है कि, "हिन्दू के लिए विवाह एक संस्कार है, तथा इस कारण विवाह सम्बन्ध द्वारा जुड़ने वाले पक्षों का सम्बन्ध संस्कार रूप है, न कि समझौते की प्रकृति का।"[5] इस सम्बन्ध में **के० एम० कपाडिया** का कहना है कि, "हिन्दू विवाह एक संस्कार है। यह पवित्र समझा जाता है क्योंकि यह तभी पूर्ण होता है जबकि यह पवित्र मन्त्रों के साथ किया जाए।"[6] 'संस्कार' शब्द से अभिप्राय विशेष प्रकार से की जाने वाली धार्मिक क्रिया से है। **आर० एन० सक्सेना** (R. N. Saxena) के शब्दों में, "संस्कार शब्द का तात्पर्य ऐसे अनुष्ठान से है

---

5. P. H. Prabhu, **Hindu Social Organization**, p. 173.
6. K. M. Kapadia, **Marriage and Family in India**, p. 168.

जिसके द्वारा मानव जीवन की क्षमताओं का उद्घाटन होता है, जो मानव को सामाजिक जीवन के योग्य बनाने वाले गुण प्रदान करता है तथा जिसके द्वारा व्यक्ति को एक विशेष सामाजिक स्तर प्रदान किया जाता है।''[7]

मजूमदार एवं **मदन** (Majumdar and Madan) के अनुसार, ''एक हिन्दू के जीवन में विवाह को अत्यावश्यक माना गया है, क्योंकि पत्नी के बिना वह शास्त्रकारों द्वारा निर्धारित आश्रम व्यवस्था की दूसरी अवस्था, गृहस्थ आश्रम में प्रवेश नहीं कर सकता। इसके साथ ही विवाह के बिना न तो सन्तान हो सकती है और न पुत्र के बिना आवागमन (जन्म-मृत्यु-पुनर्जन्म) से मुक्ति ही मिल सकती है। हिन्दू विवाह को एक संस्कार के रूप में अभिकल्पित किया गया है।''[8] इसी दृष्टि से हिन्दू विवाह को एक संस्कार के रूप में अभिकल्पित किया गया है। हिन्दू विवाह एक धार्मिक संस्कार है, इस कथन की पुष्टि हम निम्नलिखित आधारों पर कर सकते हैं—

(1) विवाह के उद्देश्यों की दृष्टि से (On the basis of aims of marriage)—अगर हम हिन्दू विवाह का उद्देश्यों की दृष्टि से मूल्यांकन करें तो इसे निश्चित रूप से एक धार्मिक संस्कार कह सकते हैं। हिन्दू विवाह के तीन प्रमुख उद्देश्य हैं—(i) धर्म, (ii) प्रजा, तथा (iii) रति। विवाह करना प्रत्येक हिन्दू का धर्म है तथा धार्मिक कर्त्तव्यों का पालन करने के लिए पत्नी का होना अनिवार्य है। सन्तानोत्पत्ति, विशेष रूप से पुत्र प्राप्ति द्वारा पितृ ऋण से उऋण होना विवाह का दूसरा प्रमुख उद्देश्य है। ये दोनों उद्देश्य अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। यद्यपि यौन सन्तुष्टि विवाह का ही एक उद्देश्य है परन्तु इसे सबसे निम्न स्थान दिया गया है।

(2) उच्च धार्मिक आदर्शों की दृष्टि से (On the basis of high religious ideals)—हिन्दुओं में अनेक ऐसे आदर्श हैं जिन्हें व्यक्ति अपने जीवन में प्राप्त करते हैं तथा जिनका अनुकरण करते हैं। हिन्दू विवाह के अन्तर्गत पति व पत्नी के सम्बन्धों को अटूट व जन्म-जन्मान्तर का माना जाता है। एक धार्मिक संस्कार होने के नाते हिन्दू विवाह अविच्छेद्य है। विवाह के पवित्र बन्धन में बँधने वालों को केवल मृत्यु ही अलग कर सकती है। विवाह होने के पश्चात् वर और वधू इस तथ्य को मानते हैं कि यह सम्बन्ध आत्मा से आत्मा का है (मात्र शरीर का शरीर से नहीं) जो पहले से निश्चित हो गया है और यह टूट नहीं सकता है। इस भावना के होने के कारण पति व पत्नी के मध्य कलह व पारिवारिक तनाव होने के बाद भी तलाक की नौबत नहीं आती है। हिन्दू स्त्री के लिए पति देवता के समान है तथा उसकी मृत्यु के पश्चात् भी वह अपने पति से बँधी रहती है तथा इसीलिए दूसरा विवाह उचित नहीं माना जाता। साथ ही, स्त्री को हिन्दुओं में अर्धांगिनी कहा जाता है जिसका अर्थ है कि वह विवाह होने पर ही अपने पति के साथ पूर्ण समझी जाती है।

(3) ऋणों से उऋण होने तथा यज्ञों की दृष्टि से (On the basis of paying of rinas or debts)—गृहस्थ आश्रम में विवाह के द्वारा प्रवेश किया जाता है तथा गृहस्थ आश्रम में सभी यज्ञों को पूरा करना पड़ता है। हिन्दू शास्त्रों में पाँच यज्ञों का उल्लेख मिलता है—(i) देवयज्ञ, (ii) ब्रह्मयज्ञ, (iii) मनुष्ययज्ञ, (iv) पितृयज्ञ तथा (v) भूतयज्ञ—और इन्हीं यज्ञों के द्वारा ऋणों को चुकाया जाता है। बिना विवाह के वैध सन्तान नहीं होगी और न पितृ यज्ञ पूरा होगा। अत: इससे यह स्पष्ट होता है कि विवाह एक धार्मिक संस्कार है।

(4) विवाह की विधि एवं धार्मिक अनुष्ठानों की दृष्टि से (On the basis of procedure of marriage and religious ceremonies)—विवाह में अनेक प्रकार के धार्मिक अनुष्ठान होते हैं। **पी० वी० काणे** ने इस प्रकार के अनुष्ठानों की संख्या उनतालीस बतलाई है। विवाह में इन धार्मिक अनुष्ठानों को इतना महत्त्व दिया गया है कि उनके अभाव में विवाह को पूर्णता नहीं मिल सकती है। विवाह पूर्ण होने के लिए इन अनुष्ठानों अथवा कृत्यों का एक विशेष विधि द्वारा निष्पादन किया जाना अनिवार्य है। विवाह होम (अग्नि द्वारा विवाह आयोजन की दैविक साक्षी तथा पुष्टि), पाणिग्रहण (वर द्वारा वधू का हाथ ग्रहण करना), तथा सप्तपदी (वर-वधू द्वारा सात पद साथ-साथ चलना, प्रत्येक पद चलने के प्रतीक रूप में एक-एक सिक्का मण्डप-स्थल पर रखते चलना और इसी क्रिया में वर से आगे रहना), ये तीन ऐसे अनुष्ठान हैं जिनके बिना विवाह अपूर्ण है। ये अनुष्ठान पवित्र मन्त्रों द्वारा विधिवत् किए जाते हैं।

(5) कन्यादान की दृष्टि से (On the basis of procedure of kanyadaan)—हिन्दुओं में दान देना और लेना पवित्र एवं धार्मिक कार्य माने जाते हैं। कन्यादान पिता के लिए सबसे बड़ा दान होता है। कन्या का पिता कन्यादान द्वारा कन्या को वर पक्ष को सौंपता है जिसे वर स्वीकार करता है। यह सब ईश्वर को साक्षी मानकर अग्नि देवता के सामने होता है।

7. आर० एन० सक्सेना, **भारतीय समाज तथा सामाजिक संस्थाएँ**, पृष्ठ 22–23.
8. डी० एन० मजूमदार तथा टी० एन० मदन, **सामाजिक मानवशास्त्र परिचय**, पृष्ठ 83.

(6) आश्रम व्यवस्था एवं पुरुषार्थ की दृष्टि से (On the basis of system of ashramas and purusharthas)—हिन्दू जीवन को चार भागों में विभाजित किया गया है जिसे चार आश्रम कहते हैं। ये हैं—(i) ब्रह्मचर्य आश्रम, (ii) गृहस्थ आश्रम, (iii) वानप्रस्थ आश्रम तथा (iv) संन्यास आश्रम। बिना गृहस्थ आश्रम के मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती है। गृहस्थाश्रम में प्रवेश विवाह द्वारा ही होता है। इस दृष्टि से भी हिन्दू विवाह एक धार्मिक संस्कार है।

इन सब उपर्युक्त कारणों से हिन्दू विवाह को एक संस्कार माना जाता है। अत: प्रभु तथा कपाडिया का इसे धार्मिक संस्कार कहना पूर्णत: उचित है।

हिन्दू विवाह की प्रक्रिया
(Process of Hindu Marriage)

हिन्दू विवाह का समस्त क्रियाकलाप धार्मिक विधि से किया जाता है। धार्मिक प्रक्रिया के द्वारा ही विवाहित जीवन के कर्त्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों को बताया जाता है। हिन्दू विवाह में निम्नलिखित आवश्यक धार्मिक संस्कारों का साधारणत: पालन किया जाता है—

(1) कन्यादान (Kanyadaan)—हिन्दू विवाह में कन्यादान प्रथम प्रक्रिया है। वर के हाथों पिता अपनी कन्या का दान करता है तथा कहता है कि "मैं इस गोत्र की गहनों से आभूषित कन्या का दान करता हूँ।" वर उत्तर देता है "मैं स्वीकार करता हूँ।" आमन्त्रित व्यक्तियों एवं बारातियों के समक्ष वर, पत्नी के साथ हमेशा रहने और उसकी रक्षा करने का वचन देता है।

(2) विवाह होम (Vivaha-homa)—कन्यादान के समय पुरोहित की आवश्यकता नहीं पड़ती है, किन्तु होम के समय पुरोहित अग्नि जलाता है और वर-वधू अग्नि में आहुति देकर विभिन्न देवी-देवताओं को प्रसन्न कर सुख एवं शान्ति की कामना करते हैं। वेदी के एक तरफ कलश रखा जाता है।

(3) पाणिग्रहण (Pani-grahan)—विवाह में पाणिग्रहण को सर्वाधिक महत्त्व दिया जाता है। पाणिग्रहण में वर-वधू एक-दूसरे का हाथ पकड़कर छह मन्त्रों का उच्चारण करते हैं तथा एक-दूसरे के जीवन भर साथ रहने, सौ वर्ष तक जीने, पुत्र उत्पत्ति इत्यादि की प्रतिज्ञा करते हैं और पारिवारिक दायित्वों का पालन करने की शपथ लेते हैं।

(4) अग्नि परिणयन (Agni-parinayan)—पाणिग्रहण के बाद वर-वधू यज्ञ कुण्ड का परिणयन गाँठ बाँधकर करते हैं। परिणयन करते समय अग्नि के समक्ष दोनों कहते हैं—मैं स्वर्ग हूँ तू पृथ्वी है, तू सामवेद है मैं ऋग्वेद हूँ। हम दोनों विवाहित हों, सन्तान उत्पन्न करें, सन्तान दीर्घजीवी हो। हम, हमारी सन्तान सौ वर्ष तक दीर्घायु हों।

(5) अश्मारोहण (Ashmarohan)—आरोहण का तात्पर्य चढ़ने से है। इस प्रक्रिया में अग्नि परिक्रमा के बाद पत्थर की शिला पर कन्या का भाई कन्या का पैर उठाकर रखवाता है। वर कहता है कि तुम शिला के समान दृढ़प्रतिज्ञ बनो (अश्मेव एवं स्थिरभाव) अर्थात् धार्मिक कार्य का पालन दृढ़ता से करो।

(6) सप्तपदी (Saptapadi)—अग्नि परिक्रमा (फेरे) के पश्चात् गाँठ बाँधकर वर-वधू दक्षिण दिशा की ओर मन्त्रोच्चारण करते हुए सात पग चलते हैं। ये सात पग सात प्रकार की कामनाओं को स्पष्ट करते हैं। इसमें अन्न, मानसिक शक्ति, अर्थ, शान्ति, पुत्र प्राप्ति, पारस्परिक सहृदयता तथा कल्याण भावनाओं की कामना करते हैं।

(7) सूर्यावलोकन (Surya-abhlocan)—सप्तपदी के पश्चात् वर-वधू सूर्यावलोकन कर सौ वर्ष दीर्घायु होने की कामना करते हैं। पति, पत्नी की रक्षा की शपथ लेता है। वर को ध्रुवतारा एवं वधू को अरुन्धती तारा के दर्शन करवाकर सदा साथ रहने का आशीर्वाद देते हैं।

(8) चतुर्थीकर्म (Chaturthi-karma)—चतुर्थीकर्म में वर के घर में वधू तीन दिन तक शुचिता (शुद्धि) के लिए जमीन पर सोती है। चतुर्थ दिन उसको सजाकर पति के कमरे में भेजा जाता है। इसे मधुयामिनी की संज्ञा दी जाती है तथा इसके पश्चात् वह गृहस्थ धर्म का पालन करती है।

हिन्दू विवाह के परम्परागत स्वरूप या प्रकार
(Traditional Forms of Hindu Marriage)

मनु के अनुसार विवाह के आठ स्वरूप होते हैं—ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य ये चार विवाह उच्च कोटि के माने गए हैं, जबकि आसुर, गान्धर्व, राक्षस तथा पैशाच विवाह निम्न कोटि के माने जाते हैं। प्रथम चार

विवाहों को प्रशस्ति (श्रेष्ठ एवं धर्मानुसार) व बाद के चार विवाहों को अप्रशस्ति (निकृष्ट कोटि के) विवाह की श्रेणी में रखा गया है। ये आठ स्वरूप निम्नलिखित हैं—

(1) ब्राह्म विवाह (Brahma vivah)—इसे उत्कृष्ट कोटि का विवाह माना जाता है तथा इसमें कन्यादान व धार्मिक संस्कार महत्त्वपूर्ण हैं। 'मनुस्मृति' के अनुसार, ब्राह्म विवाह में ''लड़की का पिता अपनी कन्या को अच्छे वस्त्रों, आभूषणों से सुसज्जित करके योग्य, सच्चरित्र, शीलवान वर को बुलाकर दान के रूप में देता है।'' (मनु० श्लोक 27)। इसमें वर तथा वधू साथ-साथ रहने की शपथ लेते हैं। यह विवाह एक प्रकार का दान होता है। इसमें होम, पाणिग्रहण तथा सप्तपदी का होना आवश्यक है। इस विवाह के तीन प्रमुख तत्त्व हैं—(i) माता-पिता की स्वीकृति, (ii) संस्कारात्मक विधि, तथा (iii) दहेज। आधुनिक युग में भी विवाह का यह स्वरूप प्रचलित है।

(2) दैव विवाह (Daiva vivah)—इस प्रकार के विवाह में यज्ञकर्ता ऋत्विज (पुरोहित), जो दैवकार्य करता है, को ही वस्त्र तथा आभूषणों से सुसज्जित करके कन्या का दान दिया जाता है। वैदिक काल में यज्ञ का अत्यधिक महत्त्व था। इस कारण जिनके यहाँ यज्ञ होते थे वे पुरोहित से अपनी कन्या का विवाह कर देते थे। मनु का मत है कि इस प्रकार के विवाह के पश्चात् कुल में उत्पन्न पुत्र से सात पीढ़ी पहले व सात पीढ़ी बाद तक उद्धार हो जाता था। कुछ विचारकों के मतानुसार यह यज्ञ के पारिश्रमिक के समान है। स्मृतिकारों ने ऐसे विवाह को आदर की दृष्टि से नहीं देखा है। उनके मतानुसार दैव विवाह यज्ञ-कार्यों में विघ्न है। यज्ञों के समाप्त होने के बाद दैव विवाह का स्वरूप प्राय: समाप्त हो गया है।

(3) आर्ष विवाह (Arsha vivah)—जब लड़का इच्छुक लड़की से विवाह करने के लिए एक जोड़ी बैल एवं गाय देता है और फिर विवाह करता है, तो इसे आर्ष विवाह कहते हैं। यह विवाह आज प्रचलित नहीं है और इस विवाह को प्रशस्ति विवाह भी नहीं माना जाता है। इस प्रकार का विवाह वधू पक्ष की गरीबी की ओर इंगित करता है परन्तु **'मित्रोदय'** के अनुसार बैल एवं गाय की जोड़ी कन्या मूल्य की प्रथा का द्योतक नहीं है। दूसरी ओर, यह भी माना जाता है कि जब कोई ऋषि विवाह के लिए राजी होता था, तब निश्चय को दृढ़ बनाने के उदाहरणस्वरूप कन्या के पिता को एक जोड़ी गाय तथा बैल देता था और फिर विवाह करता था। ऋषियों के वैवाहिक जीवन में प्रवेश के कारण ही इसे आर्ष विवाह कहते हैं।

(4) प्राजापत्य विवाह (Prajapatya vivah)—जब कन्या के पिता योग्य वर को यह कहकर कि, ''तुम दोनों आजीवन साथ रहकर धार्मिक आचरण करो'' कन्यादान करता है तो यह प्राजापत्य विवाह कहलाता है। कुछ विद्वानों के अनुसार प्राजापत्य एवं ब्राह्म विवाह एक ही हैं। **वशिष्ठ** और **आपस्तम्ब** ने इस विवाह को प्रधानता नहीं दी है क्योंकि इसमें सन्तान या पुत्र को ही अधिक महत्त्व दिया गया है। दोनों ऋषियों (वशिष्ठ व आपस्तम्ब) ने इस विवाह का वर्णन किया है और **मनु** ने बहुत सामान्य भेद कर ब्राह्म विवाह को इससे पृथक् कर दिया।

(5) आसुर विवाह (Asura vivah)—जब वर कन्या के पिता को धन देकर उससे विवाह करता है तो उसे आसुर विवाह कहते हैं। कन्या जितनी सुन्दर एवं सर्वगुणान्विता होगी, धन उतना ही अधिक देना होगा। वैदिक काल एवं प्राचीन काल में इस प्रकार के विवाह को प्रधानता दी जाती थी। धन देकर पत्नियाँ खरीदी जाती थीं। परन्तु स्मृतिकारों, बौधायन, धर्मशास्त्रकारों का मत है कि धन से खरीदी गई पत्नी, पत्नी नहीं हो सकती है। इस पत्नी से उत्पन्न पुत्र को पिण्डदान देने का भी अधिकार नहीं था।

(6) गान्धर्व विवाह (Gandharva vivah)—जब काम के वशीभूत होकर वर तथा वधू अपनी इच्छा से परस्पर विवाह करें तो इसे गान्धर्व विवाह कहा जाता है। गान्धर्व विवाह में सामान्यत: माता-पिता की इच्छा व अनुमति के विरुद्ध ही विवाह किया जाता है। वैदिक काल में भी इस प्रकार के विवाह को प्रेम-विवाह कहते हैं। **बौधायन** और **नारद** ने इस विवाह को बुरा नहीं माना है। कई बार इस विवाह को सामाजिक मान्यता देने के लिए वैवाहिक संस्कार बाद में कर लिए जाते हैं।

(7) राक्षस विवाह (Rakshasa vivah)—यह विवाह प्रथा उस समय से चली आ रही है जब स्त्रियाँ युद्ध का पारितोषिक मानी जाती थीं। मार-पीट, कपट या युद्ध के द्वारा कन्या का हरण ही राक्षस विवाह है। इसमें वर पक्ष वाले रोती हुई कन्या को बलपूर्वक ले जाते हैं। अत: इसमें बल और युद्ध को ही महत्त्वपूर्ण माना गया है। नैतिक दृष्टिकोण से इस विवाह को मान्यता नहीं मिली हुई है क्योंकि इसमें कन्या की मर्जी न होने पर भी उससे विवाह किया जाता है।

(8) पैशाच विवाह (Paisacha vivah)—यह विवाह सभी विवाहों में निम्नतम कोटि का विवाह है। **वशिष्ठ** और **आपस्तम्ब** ऋषियों ने इस प्रकार के विवाह का वर्णन नहीं किया है। जब कोई व्यक्ति सोती हुई (निद्रित), राह में जाती हुई, मद्यपान (नशा) की हुई या उन्मत्त लड़की से बलपूर्वक सम्भोग करता है और बाद में उससे विवाह करता है तो उसे ही पैशाच विवाह कहते हैं। आज इस प्रकार के विवाह मान्य नहीं हैं।

विवाह के परम्परागत स्वरूपों में आज केवल तीन प्रकार के विवाहों का ही प्रचलन है। ये हैं—ब्राह्म विवाह, आसुर विवाह, तथा गान्धर्व विवाह। ब्राह्म विवाह का प्रचलन सर्वाधिक है, जबकि गान्धर्व विवाह का उससे कम। **मजूमदार** का कहना है कि आसुर विवाह कुछ निम्न जातियों तथा यदा-कदा उच्च जातियों में पाया जाता रहा है।

हिन्दू विवाह में परिवर्तन
(Changes in Hindu Marriage)

समय के साथ-साथ प्रत्येक समाज के विभिन्न पक्षों में परिवर्तन होते हैं तथा विवाह इस सामान्य नियम का कोई अपवाद नहीं है। औद्योगीकरण, पाश्चात्य सभ्यता व शिक्षा, कानूनी प्रभाव आदि से हिन्दू विवाह के स्वरूप में परिवर्तन आया है। कुछ प्रमुख परिवर्तन निम्नलिखित हैं—

(1) विवाह एक धार्मिक कर्त्तव्य नहीं माना जाता (Marriage is no more a religious sacrament)—वर्तमान युग में विवाह का धार्मिक पक्ष कमजोर होता जा रहा है। प्राचीन काल में विवाह का प्रमुख कर्त्तव्य धार्मिक लक्ष्यों को पूरा करना था। समय के साथ यज्ञ, मोक्ष आदि की धारणा कमजोर हो गई है तथा अब पुत्र-जन्म ही विवाह का अन्तिम लक्ष्य नहीं रह गया है। उसके स्थान पर विवाह एक समझौता तथा यौन तृप्ति का माध्यम माना जाने लगा है। पहले विवाह दो आत्माओं का मिलन समझा जाता था जिस कारण पति-पत्नी के सम्बन्ध हमेशा बने रहते थे। आजकल ये सम्बन्ध तब तक ही रहते हैं जब तक पति-पत्नी एक-दूसरे से सन्तुष्ट हैं। आज व्यक्ति में व्यक्तिवादी दृष्टिकोण का अत्यधिक प्रभाव है। पहले व्यक्ति धार्मिक कर्त्तव्यों को पूरा करने के लिए विवाह करता था परन्तु आज वह व्यक्ति विवाह को एक व्यर्थ जिम्मेदारी मानता है। आज आर्थिक रूप से निर्भर महिलाएँ भी विवाह को एक बन्धन मानती हैं तथा स्वतन्त्र हैं। भारत में बड़े शहरों में कुछ वर्ष पहले तक हिप्पी संस्कृति का काफी प्रभाव रहा है। इस कारण आज लोग मुक्त प्रेम अथवा यौन स्वच्छन्दता की ओर आकर्षित हो रहे हैं।

(2) बहुविवाहों पर निषेध (Restriction on polygamy)—हिन्दुओं में आज कानूनी दृष्टिकोण से अधिक विवाह करना अपराध है। सभ्य समाजों में बहुपति तथा बहुपत्नी विवाह का प्रचलन प्रायः समाप्त हो गया है। प्राचीन काल में बहुपत्नी विवाह समृद्धता का द्योतक था परन्तु आजकल यह अपराध है।

(3) सगोत्र, सप्रवर तथा सपिण्ड विवाह को मान्यता (Recognition to sgotra, spravar and spinda marriage)—वर्तमान काल में लोग सगोत्र, सप्रवर तथा सपिण्ड विवाह को निषिद्ध नहीं मानते हैं तथा इसे प्रगति का अवरोधक मानते हैं (वैसे रूढ़िवादी परिवारों में अभी भी यह मान्यता है)। आजकल लोग अन्तर्जातीय विवाह के पक्ष में हैं तथा इसमें गोत्र, प्रवर तथा पिण्ड विवाह के निषेधों को कोई महत्त्व नहीं दिया जाता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि आज विवाह के संस्थात्मक पक्ष में परिवर्तन हुआ है।

(4) अन्तर्जातीय विवाह को मान्यता (Recognition to inter-caste marriage)—हिन्दुओं में पहले अपनी जाति के अन्दर विवाह (अन्तर्विवाह) की मान्यता थी परन्तु आज मूल्य बदल गए हैं तथा अन्तर्जातीय विवाह का प्रचलन हो गया है। आज लोग दूसरी जाति में विवाह करना प्रगति मानते हैं तथा गौरव अनुभव करते हैं। इस कारण वैवाहिक मान्यता ही बदल गई है।

(5) विधवा पुनर्विवाह को मान्यता (Recognition to widow remarriage)—हिन्दू विवाह की यह मान्यता रही है कि विधवाओं का पुनर्विवाह नहीं हो सकता। इसका कारण यह है कि जो वस्तु एक बार दान कर दी जाती है उसका फिर दान नहीं हो सकता। परन्तु कानून तथा समाज से विधवाओं को यह अधिकार मिला है तथा वे फिर से विवाह कर सकती हैं। 'हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955' के अनुसार विधवा पुनर्विवाह मान्य है।

(6) बाल विवाहों में कमी (Decline in child marriages)—शिक्षा के प्रसार व कानूनी प्रयास के कारण बाल विवाह की दर में बहुत कमी आ गई है। कानून की निगाहों में बाल विवाह आज एक अपराध है जिसके कारण दोनों पक्षों के अभिभावकों को जुर्माना व सजा हो सकती है।

(7) विवाह-विच्छेद की व्यवस्था (Provision of divorce)—पहले हिन्दू विवाह में पति-पत्नी का सम्बन्ध जन्म-जन्मान्तर का माना जाता था, परन्तु विवाह-विच्छेद को मान्यता मिलने से यह धार्मिक भावना समाप्त हो गई है। शायद यही कारण है कि आज हिन्दू समाज में विवाह-विच्छेद की दर में वृद्धि हो रही है।

उपर्युक्त परिवर्तनों का हिन्दू विवाह पर अच्छा तथा बुरा दोनों प्रकार का प्रभाव पड़ा है। जहाँ अनेक सामाजिक समस्याओं का समाधान हुआ है वहीं पर विवाह का धार्मिक पक्ष परिवर्तित हो गया है। अभी और कितना परिवर्तन होगा और उसके प्रभाव लाभप्रद होंगे या हानिप्रद यह तो आने वाला समय ही बता सकता है।

हिन्दू विवाह के निषेध
(Restrictions of Hindu Marriage)

हिन्दू विवाह में अनेक प्रकार के प्रतिबन्ध एवं निषेध हैं जिनका पालन करना आवश्यक माना जाता है। ये प्रतिबन्ध जीवनसाथी के चयन से सम्बन्धित हैं तथा हिन्दू विवाह की सीमाओं को स्पष्ट करते हैं। हिन्दू विवाह की तीन प्रमुख सीमाएँ हैं—अन्त:विवाह, बहिर्विवाह. अनुलोम एवं प्रतिलोम विवाह। इन सीमाओं को जाने बिना हिन्दू विवाह को पूरी तरह से नहीं समझा जा सकता है।

(अ) अन्तःविवाह या अन्तर्विवाह तथा बहिर्विवाह
(Endogamy and Exogamy)

प्रारम्भ में ही रक्त की शुद्धता तथा धार्मिक क्रियाओं की पवित्रता के आधार पर जाति तथा उपजातियों का विभेद शुरू हो गया था। प्रत्येक जाति अपने सदस्यों को अपनी जाति व उपजाति के अन्दर ही विवाह करने की अनुमति देती है। **जे० के० फोलसम** (J. K. Folsom) के अनुसार अपने समूह तथा जाति के अन्दर विवाह करना ही अन्त:विवाह है। अन्त:विवाह का प्रचलन प्राचीन युग से ही रहा है तथा इसका उल्लेख **'कामसूत्र'** में भी मिलता है। हिन्दू शास्त्रों के अनुसार जो व्यक्ति अपने वर्ण में विवाह करता है उसे ही उचित सन्तान की प्राप्ति होती है।

वैदिक तथा उत्तर काल में अन्त:विवाह का क्षेत्र बड़ा था क्योंकि उस काल में ब्राह्मण, क्षत्रिय व वैश्य सवर्ण (द्विज) माने जाते थे। कालान्तर में ब्राह्मण वर्ण में विभेद आया और प्रत्येक वर्ण एक-दूसरे से अलग होने लगे और अपने ही वर्ण में विवाह करना आरम्भ हुआ अर्थात् अन्त:विवाह की सीमा संकुचित होने लगी। भारत पर समय-समय पर हुए आक्रमणों ने अन्त:विवाह की सीमा को और भी संकीर्ण बना दिया है।

के० एम० कपाडिया का विचार है कि हिन्दू समुदाय अनेक जातियों में विभक्त है, जो अन्त:विवाही समूह हैं। व्यावहारिक दृष्टि से जाति पुन: अनेक खण्डों में विभाजित है। ये उपविभागीय जातियाँ भी कुछ वीसा या देश के आधार पर बँटी हैं जोकि स्थानीय हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि अन्त:विवाह का तात्पर्य अपनी जाति या समूह के अन्दर विवाह करना है। हिन्दुओं में अपनी जाति के अन्दर विवाह करना आवश्यक है। जो इस नियम को नहीं मानते थे उन्हें जाति से बाहर निकाल दिया जाता रहा है। वैसे अन्त:विवाह अपनी जाति के अन्दर या अपनी उपजाति, धर्म, प्रजाति, क्षेत्र तथा वर्ग के अन्दर होता है। आज भारत में ज्ञान व विज्ञान के प्रसार के बाद भी अन्त:विवाह का प्रचलन काफी संख्या में है।

हिन्दुओं में एक ओर अपनी जाति या उपजाति के अन्दर विवाह की मान्यता है तो दूसरी ओर, ठीक इसके विपरीत, कुछ विशेष समूहों में वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने पर निषेध भी है। इसे बहिर्विवाह की संज्ञा दी जाती है। जिस विशेष समूह में विवाह करने की आज्ञा नहीं दी गई है, उसमें से तीन प्रमुख हैं—सगोत्र, सप्रवर तथा सपिण्ड। इस सन्दर्भ में **पी० एच० प्रभु** का कथन है कि तीनों शब्द गोत्र, प्रवर तथा पिण्ड, जो बहिर्विवाह के सम्बन्ध में प्रयुक्त होते हैं, इतने अधिक संशोधित व रूपान्तरित हो गए हैं तथा उनके उत्पत्ति काल से इतना रूपान्तरण हो गया है कि उनके मौलिक अर्थों को आज समझना प्राय: असम्भव-सा हो गया है।

(ब) अनुलोम तथा प्रतिलोम विवाह
(Anuloma and Pratiloma Marriage)

किसी भी पुरुष का अपने से निम्न वर्ण की नारी या नारियों से विवाह करना 'अनुलोम' विवाह कहलाता है। इसके विपरीत, किसी नारी का अपने से निम्न वर्ण के पुरुष के साथ विवाह करना 'प्रतिलोम' विवाह है। अनुलोम विवाह के नियमानुसार ब्राह्मण अपने वर्ण के अलावा क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्णों, क्षत्रिय अपने वर्ण के अलावा वैश्य तथा शूद्र वर्णों, वैश्य अपने अलावा शूद्र वर्ण तथा शूद्र केवल अपने ही वर्ण में विवाह कर

सकता है। वैदिक काल में अनुलोम विवाह का क्षेत्र काफी विस्तृत था। **'मनुस्मृति'** में भी इसका उल्लेख मिलता है। **कपाडिया** ने अनुलोम विवाह को प्रतिबन्धित विवाह की संज्ञा दी है। कालान्तर में नए धर्मों के आगमन से वर्ण; जाति तथा उपजातियों में विभाजित हो गए। धार्मिक पवित्रता और रक्त की शुद्धता ने जाति व उपजाति के मध्य उच्चता व निम्नता की भावना को जन्म दिया और अनुलोम विवाह; कुलीन विवाह (Hypergamy) के नाम से जाना जाने लगा। ब्राह्मणों में अनेक मर्यादाएँ, विश्वास एवं क्षेत्रीय विभाजन पाया जाता है और इसी के आधार पर यह कुलीनता मानी जाती है।

अनुलोम विवाह के सन्दर्भ में **डॉ० राधाकृष्णन्** का मत है कि अनुलोम विवाह, जिसमें ऊँची जाति के पुरुष निम्न जातियों की स्त्रियों से विवाह करते हैं, मान्य रहा है तथा ऐसे विवाहों से उत्पन्न सन्तान मध्यम जाति में रखी जाती थी। उनका विचार है कि इस प्रवृत्ति का आरम्भ सम्भवत: दसवीं शताब्दी के बाद हुआ होगा। **रिजले** का मत है कि यह प्रणाली प्रजातीय संघर्ष तथा इण्डो-आर्यन प्रजाति में स्त्रियों की कमी के कारण उत्पन्न हुई है। जहाँ भी एक प्रजाति दूसरे समूह को जीत लेती थी वहीं यह प्रथा प्रारम्भ हो जाती थी।

प्रतिलोम विवाह (जैसा कि बताया गया है) अनुलोम विवाह के विपरीत है। प्रतिलोम विवाह में वधू उच्च वर्ण या जाति की तथा वर निम्न वर्ण या जाति का होता है। **कपाडिया** का कथन है कि निम्न वर्ण के पुरुषों का ऊँचे वर्ण की स्त्री से विवाह प्रतिलोम विवाह कहलाता है। प्रतिलोम विवाह से उत्पन्न होने वाली सन्तान की कोई जाति नहीं होती है। हिन्दू शास्त्रों ने इस प्रकार के विवाह को निषिद्ध ही नहीं माना है बल्कि इसका विरोध भी किया है। **हट्टन** (Hutton) के अनुसार, प्रतिलोम विवाहों पर इस कारण भी निषेध रहा है कि ऐसे विवाहों से उत्पन्न सन्तान को न तो मातृ पक्ष और न ही पितृ पक्ष से सम्पत्ति मिल सकती है। सम्भवत: इसी कारण से प्रतिलोम विवाह की संख्या हमेशा न्यून रही है।

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955
(Hindu Marriage Act, 1955)

यह अधिनियम स्वतन्त्र भारत में विवाह के क्षेत्र में अपने आप में विशेष महत्त्व रखता है। इससे पहले हिन्दुओं में विवाह अनेक प्रकार के कानूनों से नियन्त्रित होते थे। इसी कारण इस क्षेत्र में अत्यन्त दुरूहता तथा अस्पष्टता थी। 'हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955' का उद्देश्य विवाह सम्बन्धी नियमों में संशोधन करना एवं एक विस्तृत एवं संहिताबद्ध अधिनियम बनाना रहा है। यह अधिनियम हिन्दू धर्म की परिभाषा बड़े विस्तृत अर्थ में देता है। यह हिन्दू धर्म के सभी मत-मतान्तरों के साथ-साथ बौद्ध, जैन तथा सिक्ख धर्म के लोगों पर भी लागू होता है। यह 18 मई 1955 ई० से, जम्मू-कश्मीर राज्य को छोड़कर, सारे भारत में लागू होता है। इसके साथ ही इस सम्बन्ध में बने पूर्व के कानून रद्द कर दिए गए हैं। इस अधिनियम को मुख्यत: निम्नांकित चार उप-विभागों में विभक्त किया जा सकता है—

(अ) वैवाहिक शर्तें
(Conditions for Marriage)

इस अधिनियम में उन शर्तों का उल्लेख किया गया है जिसके अन्तर्गत दो विषमलिंगी व्यक्ति विवाह सूत्र में बँध सकते हैं। ये शर्तें हैं—

(1) विवाह के समय किसी पक्ष का जीवन साथी (भर्त्ता या भार्या) जीवित न हो अर्थात् न तो वर की कोई जीवित पत्नी हो और न वधू का पूर्व पति हो,

(2) विवाह के समय कोई पक्ष पागल या मूढ़ न हो अर्थात् दोनों सही मानसिक स्थिति में हों,

(3) विवाह के समय वर ने 21 वर्ष की आयु एवं वधू ने 18 वर्ष की आयु पूरी कर ली हो,

(4) उनमें आपस में सम्बन्ध निषेधात्मक न हों अर्थात् जिन प्रथाओं से वे नियन्त्रित होते हैं, वे ऐसे विवाह की स्वीकृति देती हों तथा

(5) दोनों सपिण्ड न हों (यह शर्त तब लागू होती है जब दोनों पक्षों के परम्परागत रिवाज ऐसे सम्बन्धों की अनुमति न देते हों)।

(ब) न्यायिक पृथक्करण
(Judicial Separation)

न्यायिक पृथक्करण वह व्यवस्था है जो न्यायालय द्वारा लागू होती है। इसके तहत पति-पत्नी कानून द्वारा अलग कर दिए जाते हैं परन्तु उनका सामाजिक पद पति-पत्नी का बना रहता है। इससे वैवाहिक सम्बन्ध टूटता

नहीं पर दोनों को अलग रहने की स्वीकृति होती है। वास्तव में, यह विवाहितों के लिए चेतावनी है। इस दौरान यदि वे अपने तनाव कम कर लेते हैं तो सम्बन्ध बनाए रख सकते हैं, पर अवधि पूरी होने के पश्चात् तलाक निश्चित हो जाता है। परन्तु कुछ ही आधारों पर पति या पत्नी इस अधिकार की माँग कर सकते हैं; जैसे—

(1) आवेदन करने के समय प्रार्थी का दूसरे पक्ष ने लगातार दो वर्षों से त्याग कर दिया हो,

(2) आवेदक के साथ इतना अत्याचार दूसरे पक्ष द्वारा किया गया हो और उसके दिमाग में यह भय हो कि दूसरे पक्ष के साथ रहना हानिकारक है,

(3) दूसरा पक्ष पिछले एक वर्ष से असाध्य कुष्ठ रोग से पीड़ित हो,

(4) दूसरे पक्ष ने विवाह के बाद किसी अन्य व्यक्ति से यौन सम्बन्ध स्थापित कर लिया हो तथा

(5) दूसरा पक्ष यौन रोग से पीड़ित हो जोकि प्रार्थी को भी लग सकता है और यह रोग प्रार्थी से नहीं लगा है।

(स) विवाह-विच्छेद
(Divorce)

'हिन्दू विवाह अधिनियम' की **धारा 13** के द्वारा स्त्री और पुरुष को विवाह-विच्छेद का अधिकार मिल गया है। इसके जरिए कोई भी विवाह, चाहे वह इस नियम के पारित होने के पूर्व सम्पादित हुआ हो या बाद में हुआ हो, तोड़ा जा सकता है। विवाह-विच्छेद का अधिकार स्त्रियों के लिए लाभप्रद है। पाश्चात्य समाजों की तरह यह विधान तलाक के लिए विस्तृत छूट नहीं देता, वरन् कुछ ठोस कारणों पर ही तलाक का आवेदन किया जा सकता है। तलाक की महत्त्वपूर्ण शर्तें निम्न प्रकार हैं—

(1) दूसरे पक्षकार ने विवाह के अनुष्ठान (Solemnization) के पश्चात् अपने पति या अपनी पत्नी से भिन्न किसी व्यक्ति के साथ स्वेच्छया मैथुन (Voluntary sexual intercourse) किया है,

(2) दूसरे पक्षकार ने विवाह के अनुष्ठान के पश्चात् अर्जीदार के साथ क्रूरता का व्यवहार किया है,

(3) दूसरे पक्षकार ने अर्जी के पेश किए जाने के पूर्व कम-से-कम दो वर्ष की निरन्तर कालावधि तक अर्जीदार को परित्यक्त (Deserted) रखा है,

(4) दूसरा पक्षकार अन्य धर्म में संपरिवर्तित हो जाने के कारण हिन्दू नहीं रह गया है,

(5) दूसरा पक्षकार असाध्य रूप से विकृत-चित्त (Incurably of unsound mind) रहा है अथवा निरन्तर इस हद तक मानसिक विकार से पीड़ित रहा है कि अर्जीदार से युक्ति-युक्त रूप से (Reasonably) यह आशा नहीं की जा सकती है कि वह प्रत्यर्थी के साथ रहे,

(6) दूसरा पक्षकार उग्र और असाध्य कुष्ठ (Virulent and incurable form of leprosy) से पीड़ित रहा है,

(7) दूसरा पक्षकार संचारी रूप से रतिज रोग (Venereal disease in a communicable form) से पीड़ित रहा है,

(8) दूसरा पक्ष किसी धार्मिक पन्थ के अनुसार प्रव्रज्या ग्रहण (Renounced the world) कर चुका है तथा

(9) दूसरा पक्षकार सात वर्ष से लापता है तथा उसके जीवित होने या न होने का कोई पता नहीं है।

इन धाराओं के अलावा स्त्रियों को दो अन्य कारणों से भी तलाक का अधिकार मिला हुआ है—**प्रथम**, इस अधिनियम के लागू होने से पूर्व पति ने यदि दूसरा विवाह कर लिया हो या प्रार्थी के विवाह के समय उसकी दूसरी पत्नी जीवित हो और **द्वितीय**, यदि पति विवाह के बाद बलात्कार, गुदा मैथुन, परपत्नी-गमन या अप्राकृतिक व्यभिचार का अपराधी हो।

(द) विवाह अमान्यता
(Nullity of Marriage)

अधिनियम की **धारा 11** के अनुसार विवाह अमान्यता की शर्तें इस प्रकार हैं—

(1) पहला साथी जीवित हो तथा तलाक न लेकर किसी ने धोखे से विवाह कर लिया हो,

(2) दोनों पक्षकार निषेधात्मक सम्बन्धों में आते हों तथा

(3) यदि दोनों सपिण्ड हों और उनके परम्परागत रिवाज भी सपिण्ड विवाहों की अनुमति न देते हों।

अधिनियम की **धारा 12** के अनुसार चार प्रमुख आधारों पर विवाह अमान्य हो सकता है—

(1) विवाह के समय या प्रार्थना-पत्र के समय दूसरा पक्ष नपुंसक हो,

(2) दोनों पक्षों में कोई पक्ष विकृत मस्तिष्क का हो,

(3) विवाह के समय किसी पक्ष को दबाव डालकर स्वीकृति ली गई हो तथा

(4) स्त्री विवाह के समय के पहले से किसी अन्य पुरुष से सहवास के कारण गर्भवती हो।

'हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955' ने हिन्दू विवाह के स्वरूप को काफी सीमा तक प्रभावित किया है। इसके प्रमुख प्रभाव इस प्रकार हैं—

(1) इससे हिन्दुओं में एक-विवाह प्रथा का प्रचलन हुआ है तथा इस प्रकार बहुविवाह पर रोक लगी है,

(2) विवाह की आयु के निर्धारण के कारण बाल विवाहों पर रोक लगी है,

(3) विवाह-विच्छेद के प्रावधान के कारण इसकी मौलिकता प्रभावित हुई है तथा आज यह एक सामाजिक समझौता बन गया है,

(4) हिन्दू विवाह को धार्मिक स्वीकृति के स्थान पर वैधानिक स्वीकृति मिल गई है,

(5) अन्तर्जातीय विवाहों को वैधानिक मान्यता मिल गई है तथा इससे इन्हें प्रोत्साहन मिला है,

(6) इस अधिनियम के द्वारा सपिण्ड सम्बन्धों की सीमा स्पष्ट रूप से निर्धारित कर दी गई है,

(7) इससे पत्नी को भी तलाक देने का अधिकार मिल गया है तथा इसके कारण स्त्रियों की स्थिति में सुधार हुआ है तथा

(8) विधवा पुनर्विवाह को स्वीकृति मिल गई है।

मुस्लिम विवाह
[MUSLIM MARRIAGE]

मुस्लिम सामाजिक जीवन एवं विभिन्न संस्थाएँ इस्लाम धर्म पर आधारित हैं तथा **'कुरान'** मुस्लिम रीति-रिवाजों एवं जीवन-पद्धति का मुख्य स्रोत है। परन्तु इसके बावजूद मुस्लिम जीवन, संस्थाएँ, रीति-रिवाज एक नहीं हैं तथा इन पर देश एवं काल का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। उदाहरणार्थ, भारत में मुसलमानों ने हिन्दुओं में पाई जाने वाली जाति व्यवस्था, संयुक्त परिवार प्रणाली एवं बाल विवाह जैसी अनेक बातों को अपनाया तथा अपने रीति-रिवाजों में अनेक परिवर्तन किए। इसका एक कारण अनेक हिन्दुओं द्वारा इस्लाम धर्म ग्रहण करना भी रहा है। ऐसे लोग हिन्दू से मुसलमान तो बन गए, परन्तु हिन्दू जीवन-पद्धति और रीति-रिवाजों को पूरी तरह से छोड़ नहीं सके।

मुसलमानों में विवाह की अपनी एक विशिष्ट पद्धति है। पुराने समय में मुसलमानों में लड़कियों को इतना अधिक छिपाया जाता था कि लड़के वाले लड़की को आसानी से नहीं देख पाते थे। कभी-कभी शादी लड़का और लड़की के पैदा होने पर उनके माता-पिता तय कर देते थे जिसे 'ठीकरे की माँग' कहा जाता था। पहले लड़के और लड़कियाँ विवाह के अवसर पर अपनी राय भी नहीं दे सकते थे क्योंकि विवाह के मामले में उनका कुछ बोलना बेहयाई व बेशर्मी मानी जाती थी। परन्तु अब समय के साथ-साथ मुस्लिम विवाह की रस्में भी काफी बदलती जा रही हैं।

मुस्लिम विवाह का अर्थ
(Meaning of Muslim Marriage)

मुसलमानों में विवाह के लिए 'निकाह' शब्द प्रयुक्त होता है। 'निकाह' अरबी भाषा का शब्द है जिसका शाब्दिक अर्थ नर-नारी का विषयी समागम है। **हेदया** (Hedaya)[9] के अनुसार निकाह का शाब्दिक अर्थ **'लिंगों का मेल'** (Union of sexes) है और विधि में इसका अर्थ **'विवाह'** है। इस्लामी वैधानिक मान्यताओं के अनुसार निकाह एक कानूनी संविदा है जिसका लक्ष्य पति-पत्नी के यौन सम्बन्धों तथा उनकी सन्तान के सम्बन्धों व उनके पारस्परिक अधिकारों तथा कर्त्तव्यों को वैधता प्रदान करना है।

मुस्लिम विवाह की परिभाषाएँ
(Definitions of Muslim Marriage)

प्रमुख विद्वानों ने इसकी परिभाषा अग्रवर्णित प्रकार से दी है—

9. **Hedaya**, p. 33.

(1) **मुल्ला** (Mulla) के अनुसार—"निकाह को एक संविदा के रूप में परिभाषित किया जाता है जिसका उद्देश्य सन्तानोत्पत्ति और सन्तान को वैधता प्रदान करना है।"[10]

(2) कपाडिया (Kapadia) के अनुसार—"इस्लाम में विवाह एक अनुबन्ध है जिसमें दो साक्षियों के (प्रत्येक पक्ष का एक) हस्ताक्षर होते हैं। इस अनुबन्ध का प्रतिफल (Consideration) 'मेहर' वधू को भेंट दी जाती है।"[11]

(3) **अली** (Ali) के अनुसार—"मुस्लिम विवाह एक संविदा (अनुबन्ध) है जिसके लिए न तो किसी पुरोहित (मुल्ला) की आवश्यकता होती है और न ही किसी धार्मिक कर्मकाण्ड की।"[12]

(4) **रहीम** (Rahim) के अनुसार—"मुस्लिम विधिशास्त्री विवाह की संस्था को इबादत या धार्मिक (भक्तिक) कृत्यों तथा मुआमलात या मनुष्यों के बीच व्यवहार दोनों को सम्मिलित करने वाला मानते हैं।"[13]

(5) **विल्सन** (Wilson) के अनुसार—"(मुस्लिम) विवाह सम्भोग तथा सन्तान उत्पत्ति को वैधता प्रदान करने के उद्देश्य के लिए संविदा है।"[14]

उपर्युक्त परिभाषाओं से मुस्लिम विवाह की संविदात्मक प्रकृति स्पष्ट होती है। मुस्लिम विवाह मुख्यत: एक समझौता है जिसका उद्देश्य यौनिक सम्बन्धों और बच्चों के प्रजनन को कानूनी रूप देना है तथा समाज के हित में पति-पत्नी और उनसे उत्पन्न सन्तानों के अधिकारों व कर्त्तव्यों को निर्धारित करके सामाजिक जीवन का नियमन करना है। संविदा में सामान्यत: तीन विशेषताएँ पाई जाती हैं—**प्रथम**, दोनों पक्षों की स्वतन्त्र सहमति, **द्वितीय**, स्वीकृति के रूप में कुछ-न-कुछ पेशगी, तथा **तृतीय**, नियमों के आधार पर समझौते को मान्यता। मुस्लिम विवाह में ये तीनों बातें ही आ जाती हैं।

कुछ विद्वान् मुस्लिम विवाह को समझौते के साथ-साथ संस्कार भी मानते हैं। **'कुरान'** के अनुसार विवाह समाज का आधार माना गया है। अस्थायी विवाह को वर्जित किया गया है। विवाह एक संस्था है जिससे मनुष्य उन्नति करता है तथा मानव जाति समाप्त नहीं होती है। पैगम्बर का कहना है कि विवाह मेरी सुन्नत (आदेश) है तथा जो मेरे आदेश को नहीं मानता है, वह मेरा अनुयायी नहीं है। मुस्लिम विधिवेत्ताओं का मानना है कि विवाह करने से मनुष्य पुण्य तथा न करने से पाप कमाता है।

मुस्लिम विवाह की शर्तें
(Conditions of Muslim Marriage)

मुस्लिम विवाह की प्रमुख शर्तें निम्नांकित हैं—

(1) प्रत्येक मुसलमान जिसकी उम्र 15 वर्ष हो चुकी है तथा सही मस्तिष्क का (पागल न हो) है, वह विवाह (निकाह) के योग्य है। संरक्षक (वली) की अनुमति से नाबालिग का विवाह भी हो सकता है।

(2) निकाह के समय दोनों पक्षों पर किसी भी प्रकार का दबाव न हो अर्थात् दोनों की निकाह के लिए स्वतन्त्र स्वीकृति हो।

(3) वर तथा वधू काजी के सामने निकाह की स्वीकृति दें।

(4) निकाह में दो गवाहों (स्थिरचित्त, वयस्क, मुसलमान) का होना आवश्यक है। गवाहों के मामले में दो स्त्रियाँ एक पुरुष के बराबर मानी गई हैं। इसलिए दो पुरुष गवाह न होने पर एक पुरुष व दो स्त्रियाँ गवाह बन सकती हैं।

(5) विवाह के प्रतिफल के रूप में मेहर की राशि निश्चित कर ली गई हो या भुगतान कर दिया गया हो।

(6) दोनों पक्ष निकाह के समय सामान्य स्थिति में हों अर्थात् किसी भी प्रकार का नशा नहीं किए हों।

(7) दोनों पक्ष निषिद्ध सम्बन्धों के अन्तर्गत न आते हों।

मुस्लिम विवाह के उद्देश्य
(Aims of Muslim Marriage)

मुस्लिम विवाह के प्रमुख उद्देश्य अग्रलिखित हैं—

10. D. F. Mulla, **Principles of Muslim Law**, p. 423.
11. K. M. Kapadia, Op. Cit., p. 201.
12. Amir Ali, **The Spirit of Islam**, p. 257.
13. Abdur Rahim, **The Principles of Muhammadan Jurisprudence**, p. 327.
14. Sir Ronald Wilson, **Anglo Mohammadan Law**, p. 1.

(1) मुस्लिम विवाह का सर्वप्रथम उद्देश्य परिवार का निर्माण करना है।

(2) इसका दूसरा उद्देश्य बच्चों को जन्म देना तथा उनका पालन-पोषण करना है।

(3) इसका तीसरा उद्देश्य स्त्री-पुरुष को यौन सम्बन्ध स्थापित करने की वैध स्वीकृति प्रदान करना है।

(4) मुस्लिम विवाह का चौथा उद्देश्य पति-पत्नी के सम्बन्धों व पारस्परिक अधिकारों को 'मेहर' द्वारा स्थायी बनाना भी है।

(5) इसका एक अन्य उद्देश्य एक समझौते के रूप में पति-पत्नी को यह अधिकार प्रदान करना है कि यदि कोई पक्ष समझौते का पालन नहीं करता तो दूसरा पक्ष उसे छोड़ सकता है।

मुस्लिम विवाह में निषेध
(Restrictions in Muslim Marriage)

मुस्लिम विवाह में निम्नलिखित प्रमुख निषेधों का पालन करना पड़ता है—

(1) मुस्लिम विवाह कानून के अनुसार विवाह अहामे किताब (किताबियत) मजहब मानने वाले (यहूदी, पारसी) में ही हो सकता है परन्तु बुतपरस्तों (मूर्ति-पूजकों) में विवाह नहीं करना चाहिए। अगर कोई अपने धर्म से भिन्न स्त्री से विवाह कर लेता है तो उसका धर्म परिवर्तन करके विवाह को वैध किया जाता है। मुसलमान स्त्री मुसलमान के अतिरिक्त किसी दूसरे पुरुष से विवाह नहीं कर सकती है।

(2) एक पुरुष चार पत्नियाँ होने पर पाँचवीं स्त्री से विवाह नहीं कर सकता है। अगर वह ऐसा करना चाहे तो उसे पहले तलाक देना पड़ता है।

(3) एक पति के होते हुए स्त्री दूसरे पुरुष से विवाह नहीं कर सकती है।

(4) गवाहों तथा काजी के समक्ष किया गया विवाह ही वैध है। आपस में किया गया विवाह, जिसमें काजी व गवाह न हों, अवैध है।

(5) स्त्री इद्दत की अवधि में दूसरा विवाह नहीं कर सकती है। मान लीजिए; पति की मृत्यु या तलाक के बाद स्त्री दूसरा विवाह करना चाहे तो तीन माह तेरह दिन (इद्दत की अवधि) तक वह विवाह नहीं कर सकती है। इद्दत की अवधि में इस बात की पुष्टि की जाती है कि स्त्री गर्भवती तो नहीं है।

(6) विशेष कारणों से गर्भवती महिला तलाक पा सकती है। परन्तु वह बच्चे के जन्म तक दूसरा विवाह नहीं कर सकती है।

(7) तीर्थयात्रा के समय वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करना निषेध है।

(8) बहुत समीप के रक्त सम्बन्धियों में विवाह निषिद्ध है।

डॉ० माजदा असद[15] के अनुसार इस्लाम में जिन स्त्रियों के साथ निकाह नहीं किया जा सकता उन्हें **महरम** कहते हैं। अपने निकट के सम्बन्धियों में माँ, बहन, बेटी, पोती, भतीजी, भानजी से विवाह करने की इजाजत नहीं है। सगे मामा, चाचा, मौसी, बुआ के साथ भी निकाह नहीं हो सकता है। इसी प्रकार, सास, बहू (बेटे की पत्नी), बीवी की लड़की (सौतेली) या सौतेली माँ के साथ भी विवाह करने की अनुमति नहीं है। पत्नी की बहन से शादी भी पत्नी के जीवित होते हुए जायज नहीं है क्योंकि दो सगी बहनें आपस में सौत नहीं बन सकती हैं।

मुस्लिम विवाहों में बाधाओं या निषेधों के दो रूप हैं। जब बाधाएँ ठीक कर ली जाती हैं उसे **फासिद निकाह** कहते हैं और जब बाधाएँ ठीक नहीं की जा सकतीं तो उसे **बातिल निकाह** कहते हैं। फासिद निकाह; जैसे बिना काजी के विवाह, चार पत्नियों के रहते पाँचवाँ विवाह, धर्म के बाहर विवाह, इद्दत की अवधि में विवाह पर प्रतिबन्ध आदि फासिद निकाह के उदाहरण हैं। बातिल विवाह के अन्तर्गत, पति के जीवित रहते हुए तलाक लिए बिना दूसरे पुरुष के साथ विवाह, निकट के रक्त सम्बन्धियों में विवाह, ऐसे बच्चे जो एक ही माँ के न हों पर उनका लालन-पालन एक साथ हुआ हो अर्थात् उन्होंने एक ही माँ का दूध पीया है तो उनका विवाह सम्पूर्ण रूप से निषिद्ध है।

मुस्लिम विवाह में मेहर
(Dower in Muslim Marriage)

मेहर निकाह का आधारभूत अंग है। मुस्लिम कानून के अनुसार बिना मेहर निकाह की सम्भावना ही नहीं रहती है। मेहर वह धनराशि है जोकि पति अपनी पत्नी को विवाह के समय देता है अथवा देना कबूल करता है।

15. डॉ० माजदा असद, **भारतीय मुस्लिम त्योहार और रीति-रिवाज**, पृष्ठ 64.

विल्सन (Wilson)[16] के अनुसार मेहर पत्नी द्वारा शरीर के समर्पण के लिए प्रतिफल है, जबकि **अब्दुर रहीम** (Abdur Rahim)[17] के अनुसार यह या तो वह धनराशि या अन्य प्रकार की सम्पत्ति है जिसे पत्नी विवाह के द्वारा प्राप्त करने की हकदार हो जाती है। यह एक बाध्यता है जिसे विधि द्वारा पति के ऊपर पत्नी के प्रति आदर के प्रतीक के रूप में अधिरोपित किया गया है। मेहर तथा वधू मूल्य में प्रमुख अन्तर यह है कि वधू मूल्य की राशि वधू के पिता को मिलती है, जबकि मेहर की राशि पर केवल वधू का ही अधिकार होता है। प्राचीन अरब समाज में यह राशि वर पक्ष की ओर से कन्या पक्ष को दी जाती थी जिसका अधिकारी कन्या का पिता होता था। उसे **'सदक'** कहते थे।

इस्लाम के प्रादुर्भाव से मेहर की अरबी परम्परा थोड़े परिवर्तनों के साथ इस्लाम में एक परम्परा बन गई है। पवित्र ग्रन्थ 'कुरान' में यह कहा गया है कि यदि तुम अपनी पत्नियों से विवाह-विच्छेदन करते भी हो तो उदारतापूर्वक करो। तुमने जो कुछ उन्हें दिया है उसे वापस लेने की तुम्हें आज्ञा नहीं है। पैगम्बर की उस आज्ञा का परिणाम यह हुआ कि मेहर नारी की सम्पत्ति बन गई। पैगम्बर ने जहाँ पति को विवाह-विच्छेद अधिकार दिया, वहीं पत्नी को मेहर की धनराशि पर एकमात्र अधिकार भी दिया।

यदि निकाह के समय मेहर तय न हुआ हो तो पति व पत्नी की हैसियत के अनुसार काजी को मेहर तय करने का अधिकार प्राप्त है या विवाह-विच्छेद के समय अदालत को मेहर तय करने का अधिकार है। मेहर एक प्रकार से आर्थिक सुरक्षा का साधन माना जा सकता है। मेहर का धन पति के तलाक देने या मृत्यु हो जाने पर पत्नी उपयोग कर सकती है। यद्यपि न्यूनतम तथा अधिकतम मेहर की कोई सीमा निश्चित नहीं है, फिर भी **'हनाफी विधि'** में न्यूनतम मेहर दस दिरहम तथा **'मालिकी विधि'** में तीन दिरहम है। **'शफी विधि'** तथा **'शिया विधि'** में इसकी न्यूनतम तथा अधिकतम सीमा निश्चित नहीं है।

मेहर निम्नलिखित चार प्रकार का होता है—

(1) महरे मुअज्जिल (तुरन्त या सत्वर मेहर)—यह मेहर की वह राशि है जो पति को विवाह के पश्चात् या सहवास से पूर्व ही तुरन्त देनी पड़ती है। सैद्धान्तिक रूप में अगर पति मेहर की राशि पत्नी को न दे तो पत्नी को पूरा अधिकार है कि वह पुरुष से यौन सम्बन्ध स्थापित न करे।

(2) महरे मुवज्जल (स्थगित मेहर)—मेहर के इस प्रकार में पत्नी को मेहर पति के तलाक या मृत्यु के बाद मिलती है। इस प्रकार के मेहर में धनराशि विवाह से पहले तय होती है अर्थात् निकाह के समय मेहर का वादा किया जाता है परन्तु उसे दिया नहीं जाता है अर्थात् उसे स्थगित रखा जाता है।

(3) महरे उल-मिस्ल (उचित मेहर)—यदि निकाह के समय किसी कारणवश मेहर की राशि तय न हो और तलाक की स्थिति आने पर स्त्री उसकी माँग करे तो उस दशा में तय किए गए मेहर को महरे उल-मिस्ल कहते हैं। इस प्रकार के मेहर का निर्धारण वर तथा वधू के सहयोग से, न्यायालय से, नहीं तो वधू के पिता की आर्थिक स्थिति से तय होता है। कभी-कभी पति के परिवार में अन्य किसी स्त्री को प्राप्त होने वाली मेहर की राशि से भी इसका निर्धारण होता है।

(4) महरे मुसम्मा (निश्चित मेहर)—यह वह मेहर है जो विवाह से पूर्व या विवाह के समय निश्चित किया जाता है तथा इसका भुगतान भी सामान्यत: विवाह के समय ही किया जाता है। यह तीन-चार रुपयों से लेकर हजारों रुपयों की संख्या में हो सकती है।

मुस्लिम विवाह के भेद
(Kinds of Muslim Marriage)

मुस्लिम विवाह के निम्नलिखित प्रकारों में भेद किया जा सकता है—

(1) वैध या सही विवाह (निकाह)—सही विवाह में पति-पत्नी की स्वतन्त्र सहमति होती है। शरियत के अनुकूल मसजिद में काजी के समक्ष विवाह होता है। इस प्रकार के विवाह में मुस्लिम रीतियों का पालन किया जाता है। मुसलमानों में विवाह का यह भेद सबसे अधिक प्रचलित है। सही विवाह को 'निकाह' की संज्ञा दी गई है।

(2) शून्य या बातिल विवाह—यह वह विवाह है जो निषिद्ध कोटि के पुरुष-स्त्री में होता है। ऐसे विवाह कुछ निषेध के कारण मान्य नहीं होते हैं।[18] रक्त सम्बन्ध, विवाह सम्बन्ध (Affinity), धात्रेय

16. Sir Ronald Wilson, Op. Cit., p. 2.
17. Abdur Rahim, Op. Cit., p. 344.
18. विस्तृत विवेचन हेतु देखें, के० पी० शर्मा, **मुस्लिम विधि**, पृष्ठ 98-99.

(Fosterage), दूसरे की पत्नी से विवाह, दो बहनों का साथ-साथ संविदा द्वारा विवाह, पाँच पत्नियों के साथ एक संविदा द्वारा विवाह तथा तीन बार तलाकशुदा पत्नी से पुनर्विवाह के आधार पर विवाह शून्य माना जाता है।

(3) अनियमित या फासिद विवाह—इस प्रकार के विवाह में कुछ बाधाएँ होती हैं। अगर उनमें संशोधन कर लिया जाता है तो विवाह वैध हो जाता है। उदाहरण के लिए, एक मुस्लिम व्यक्ति चार विवाह होने के बाद एक और विवाह कर लेता है तो ऐसी परिस्थिति में वह किसी एक को तलाक देकर विवाह को वैध कर सकता है।

(4) मुता विवाह—मुता विवाह की प्रकृति अस्थायी होती है। इसका प्रमुख उद्देश्य रति (सुख) को प्राप्त करना है। 'मुता' का शाब्दिक अर्थ ही 'आनन्द'(Enjoyment) अथवा 'उपयोग' (Use) है। जब सैनिक पुरुष घर से बाहर जाते थे तो मुता विवाह को अपना लेते थे। इसमें एक विशेष अवधि तक पति व पत्नी के मध्य वैयक्तिक समझौता होता है तथा इसमें मेहर भी सम्मिलित होती थी। इस निश्चित अवधि (एक दिन, एक माह, एक वर्ष या कई वर्ष) तक पति व पत्नी का सम्बन्ध बना रहता है। अवधि समाप्त होने के पश्चात् वे अलग हो जाते हैं तथा पत्नी को मेहर की राशि प्राप्त हो जाती है। इस प्रकार के विवाह से उत्पन्न सन्तानें वैध होती थीं। इसी अरबी प्रथा से इस्लाम में मुता विवाह का विकास हुआ है।

अत: मुता एक अस्थायी विवाह है क्योंकि इसमें समझौता निश्चित समय के लिए होता है। निश्चित समय समाप्त होने के साथ ही विवाह सम्बन्ध स्वत: समाप्त हो जाता है। इसमें मेहर का प्रावधान होता है और अगर पति निश्चित अवधि के पूर्व वैवाहिक सम्बन्ध तोड़ना चाहे तो पूरा मेहर देना पड़ता है। इसे **'हिबाए-मुद्दत'** कहते हैं। कोई स्त्री अपने पति को छोड़ना चाहे तो उसे उसी अनुपात में मेहर भी छोड़नी पड़ती है। मुता विवाह में उत्पन्न सन्तानें वैध मानी जाती हैं। शिया विवाह प्रणाली में मुता विवाह वैध है। शिया पुरुष मुता विवाह की संविदा किसी ऐसी स्त्री से कर सकता है जो किताबिया (ईसाई या यहूदी) या अग्नि-पूजक (पारसी) हो लेकिन शिया स्त्री केवल मुस्लिम पुरुष से ही मुता कर सकती है। सुन्नी विवाह प्रणाली में मुता विवाह को अवैध माना जाता है। आज के युग में मुता विवाह को मुसलमानों में भी हेय दृष्टि से देखा जाता है।

मुस्लिम विवाह की प्रक्रिया
(Process of Muslim Marriage)

मुस्लिम विवाह में जिन रस्मों को पूरा किया जाता है, उनका संक्षेप में विवरण इस प्रकार है—

विवाह का सूत्रपात वर पक्ष की ओर से होता है। वर पक्ष द्वारा कन्या पक्ष से कन्या माँगी (खितबा की माँग या पैगाम) जाती है तथा प्रस्ताव की स्वीकृति के बाद निकाह के लिए तिथि निश्चित कर दी जाती है। **डॉ० माजदा असद**[19] के अनुसार, अगर कभी कोई लड़की वाला किसी लड़के वाले के घर चला गया तो इसे बहुत बुरा समझा जाता है और यह सोचा जाता है कि लड़की में कोई कमी या ऐब है तभी उसके घर वाले उसका पगाम (विवाह की बात) लेकर आए हैं। इसमें यह बात ध्यान देने के योग्य है कि मुस्लिम विवाह की प्रक्रिया हिन्दू विवाह की तरह लम्बी नहीं है। सामान्यत: वर की तरफ से खितबा की माँग तथा इसकी स्वीकृति एक ही बैठक में मिल जाती है।

निकाह के समय वर तथा कन्या के माता-पिता तथा अन्य सम्बन्धी उपस्थित रहते हैं। मेहर की राशि जब तय होती है तब दो गवाह इस स्वतन्त्र अनुमति के साक्षी होते हैं। निकाह की शर्तें तय होने के बाद वर तथा वधू की अनुमति ली जाती है। इसके पश्चात् फातिहा ('कुरान' का पहला 'सुरा' जिसमें इस्लामी जीवन की क्रियाओं का वर्णन है) पढ़ा जाता है। खुतबा पढ़कर वर व वधू को वैवाहिक जीवन के महत्त्व से परिचित करवाया जाता है। इसके साथ निकाह सम्पन्न हो जाता है। निकाह के बाद वलीमा (विवाह भोज) होता है। निकाह के दूसरे दिन नव-विवाहिता पति-पत्नी का परिचय करवाकर विदाई दी जाती है जिसे 'जिल्वा' कहते हैं।

मुस्लिम विवाह-विच्छेद अथवा तलाक
(Muslim Divorce)

अरबी समाज में पति को निकाह सम्बन्ध समाप्त करने का पूर्ण अधिकार प्राप्त था। 'तलाक' अरबी भाषा के मूल शब्द 'तल्लाका' से बना है जिसका अर्थ किसी जानवर को बाँधने के रस्से से मुक्त करना होता है। 'तलाक' का अर्थ त्यागना है तथा पति के त्यागने का अर्थ पत्नी को निकाह के बन्धन से मुक्त करना होता है।

19. डॉ० माजदा असद, वही, पृष्ठ 63.

मुस्लिम विधि में तलाक, पति को प्राप्त ऐसी सम्पूर्ण शक्ति को प्रदर्शित करता है जिससे वह अपनी पत्नी से कभी भी विवाह-विच्छेद कर सकता है।[20] परन्तु यह विवाह-विच्छेद का अधिकार मात्र पति को प्राप्त था। विवाह-विच्छेद के समय मेहर की राशि (अगर इसका भुगतान विवाह से पूर्व या विवाह के समय नहीं किया गया है) पत्नी को देनी पड़ती थी। तलाक की वर्तमान व्यवस्था को प्राचीन अरब में **'खोल'** कहा जाता था। इसमें पिता को अपनी कन्या को पति की प्रभुता से उद्धार के लिए वधू मूल्य (सदक) को वापस करने की रीति थी।

निकाह को स्थायी बनाने व पति की निरंकुशता पर रोक लगाने के लिए पैगम्बर ने यह आज्ञा भी दी है कि या तो पत्नियों को दयालुता के साथ अपनाओ या उन्हें सहृदयता के साथ तलाक दे दो। तलाक के सन्दर्भ में यह कहना अधिक उचित होगा कि प्राचीन अरबी प्रथा का काफी प्रभाव मुस्लिम विवाह-विच्छेद पर मिलता है।

शिया विधि प्रणाली में विवाह-विच्छेद में गवाहों का होना अनिवार्य है, जबकि सुन्नी विधि प्रणाली में इसकी आवश्यकता नहीं होती है। इस्लामी कानून के अनुसार सही मस्तिष्क का मुसलमान, जिसने विवाह सन्धि की आयु प्राप्त कर ली है, अपनी इच्छानुसार तलाक दे सकता है। इस्लामी कानून में मौखिक व लिखित दोनों प्रकार के तलाकों को मान्यता प्राप्त है। स्वीकृत तलाक के प्रमुख प्रकार निम्नलिखित हैं—

(1) तलाके अहसन—इस प्रकार के तलाक के अन्तर्गत पति पत्नी के तुहर (मासिक धर्म) के समय तलाक की घोषणा करता है और इद्दत की अवधि (सामान्यत: चार माह दस दिन) में यौन सम्पर्क स्थापित नहीं करता। इद्दत की अवधि समाप्त होते ही वैवाहिक सम्बन्ध समाप्त हो जाते हैं, परन्तु इद्दत की अवधि में यौन सम्पर्क स्थापित करने से तलाक वापस हो जाता है। यह तलाक सर्वाधिक अनुमोदित एवं सर्वश्रेष्ठ माना जाता है क्योंकि इसे पैगम्बर के साथियों ने मान्यता प्रदान की तथा इसमें पति को तलाक का खण्डन करने का अवसर रहता है।

(2) तलाके हसन—इसमें पति लगातार तीन तुहर तक तलाक की घोषणा करता है तथा इन तुहरों के मध्य यौन सम्पर्क स्थापित नहीं करता है। इसमें तथा तलाके अहसन में केवल यह अन्तर है कि तलाके अहसन में एक बार ही तलाक देने की घोषणा की जाती है जबकि तलाके हसन में तीन महीने तक प्रत्येक तुहर के समय तलाक देने की घोषणा की जाती है। तीसरी बार का उच्चारण विधि द्वारा अन्तिम माना जाता है तथा यह अखण्डनीय होता है।

(3) तलाके-उल-विद्दत (तलाके बयान)—तलाके-उल-विद्दत को उमैयद सम्राटों ने हिजरी सन् की दूसरी शताब्दी में लागू किया था। शिया विधि में इस तलाक को मान्यता नहीं दी जाती, परन्तु सुन्नियों में यह वैध है। इसके अनुसार तुहर के समय पति तीन बार तलाक की घोषणा (मैं तुझे तीन बार तलाक देता हूँ अथवा 'मैं तुझे तलाक देता हूँ, मैं तुझे तलाक देता हूँ, मैं तुझे तलाक देता हूँ') करता है तथा इद्दत के समय तक सहवास नहीं करता है। इस तलाक की विशेषता यह है यह वापस नहीं होता है अर्थात् यह प्रत्यावर्तनीय नहीं है। तीन तलाक के मुद्दे पर अब काफी विवाद हो रहा है। यह मामला उच्चतम न्यायालय के विचाराधीन है। उच्चतम न्यायालय ने सुनवाई पूरी कर ली है तथा शीघ्र निर्णय की अपेक्षा है।

(4) इला—जब सही दिमाग का वयस्क (पति) खुदा या किसी भी ऐसी ही प्रकार की कसम लेकर लगातार चार माह (इद्दत की अवधि) तक यौन सम्बन्ध स्थापित नहीं करता है तो अवधि समाप्त होने के बाद तलाक हो जाता है और इस मध्य अगर यौन सम्बन्ध स्थापित हो जाये तो तलाक वापस हो जाता है।

(5) खुला—इस प्रकार के तलाक में पत्नी पति के समक्ष तलाक का प्रस्ताव रखती है। इसमें इद्दत का पालन किया जाता है। इसमें पत्नी पति को आश्वासन देती है कि वह मेहर का धन नहीं लेगी। इस प्रकार के तलाक में दोनों का वयस्क एवं सही मस्तिष्क का होना अनिवार्य है। खुला को 'कुरान' में मान्यता दी गई है।

(6) मुबारत—इसमें दोनों (पति-पत्नी) परस्पर सहमति से विवाह-विच्छेद तय करते हैं तथा किसी भी पक्ष को दूसरे के लिए क्षति पूर्ति नहीं देनी पड़ती है। मुबारत का अर्थ होता है छुटकारा या पारस्परिक मुक्ति।

(7) जिहर—यह पति द्वारा उत्पन्न परिस्थिति होती है। इसमें पति अपनी पत्नी को ऐसी स्त्री मान लेता है या उसकी तुलना ऐसी स्त्री से करता है जिसके साथ मुस्लिम कानून के अन्तर्गत विवाह नहीं हो सकता है। इस प्रकार की तुलना 'कुरान' में निषिद्ध मानी गई है तथा 'कुरान' इस प्रकार के विवाह-विच्छेद को मान्यता प्रदान करता है। पत्नी पति से प्रायश्चित करने को कहती है। तीन प्रायश्चितों को इस्लामी विधि में रखा गया है—

20. विस्तृत विवेचन हेतु देखें के० पी० शर्मा, वही, पृष्ठ 161.

(i) एक गुलाम को स्वतन्त्र करो, (ii) दो माह का उपवास रखो तथा (iii) साठ दिन व्यक्तियों को भोजन कराओ। यदि पति प्रायश्चित न करे तो पत्नी अदालत में प्रार्थना-पत्र दे सकती है। यदि अदालत की आज्ञा पर भी पति प्रायश्चित नहीं करता तो अदालत के द्वारा सम्बन्ध विच्छेद किया जा सकता है।

(8) लियान—लियान सही निकाहों पर लागू होता है। इसका शाब्दिक अर्थ झूठा आरोप लगाना है। जब पति ईश्वर की कसम खाकर पत्नी पर परपुरुषगमन का आरोप लगाता है तो पति का यह कार्य 'लियान' कहलाता है। परपुरुषगमन के अपराध को सिद्ध करने के लिए चार गवाहों का होना आवश्यक है। इसलिए पति चार बार ईश्वर को गवाह मानकर पत्नी पर परपुरुषगमन का अपराध आरोपित करता है। यदि पत्नी के इनकार करने तथा कहने पर पति आरोप वापस न ले तो पत्नी अदालत में तलाक के लिए प्रार्थना-पत्र दे सकती है। तलाक की घोषणा न्यायालय द्वारा होती है।

1939 ई० में **'मुस्लिम विवाह-विच्छेद अधिनियम'** (Dissolution of Muslim Marriage Act, 1939) के पारित होने पर मुस्लिम स्त्री को विवाह-विच्छेद के पर्याप्त अधिकार प्राप्त हुए हैं। इस अधिनियम की **धारा दो** के अनुसार निम्नलिखित परिस्थितियों में पत्नी द्वारा तलाक सम्भव है—

(1) यदि पति के बारे में चार वर्ष से कोई सूचना न मिले।

(2) यदि पति जानबूझकर अथवा अपनी असमर्थता के कारण अपनी पत्नी का भरण-पोषण करने में पिछले दो वर्षों से लगातार असफल रहा हो।

(3) यदि पति को सात वर्ष अथवा उससे लम्बी अवधि की कैद हो जाए और इसके लिए कोई अपील न चल रही हो।

(4) यदि उचित कारण के बिना पति तीन वर्षों से पत्नी के साथ दाम्पत्य-दायित्वों या वैवाहिक कर्त्तव्यों (यौन सम्बन्ध स्थापित न करे) का पालन न कर रहा हो।

(5) विवाह के समय से लेकर तलाक के लिए प्रार्थना-पत्र देते समय तक यदि पति नपुंसक हो।

(6) यदि पति दो वर्ष से संक्रामक रोग (कोढ़ या उग्र रतिजन्य रोग) या उन्मत्तता (पागलपन) से ग्रस्त हो।

(7) यदि बाल विवाह हुआ है और पत्नी द्वारा पति से सहवास न होने तथा अठारह वर्ष की आयु पूरी होने से पूर्व ही ऐसे विवाह के विरुद्ध घोषणा कर दी गई है।

(8) यदि पति व्यभिचारी हो, क्रूर हो, पत्नी को अभ्यासत: पीटता हो, पत्नी को अनैतिक कृत्य के लिए बाध्य करता हो, सभी पत्नियों के साथ समानता का व्यवहार न करता हो, धार्मिक कार्यों में बाधा पहुँचाता हो, तो पत्नी द्वारा तलाक का प्रार्थना-पत्र न्यायालय में प्रस्तुत किया जा सकता है।

(9) इसके अतिरिक्त, मुस्लिम कानून के अनुसार जो कारण अमान्य हैं उसके आधार पर भी विवाह-विच्छेद किया जा सकता है।

हिन्दू एवं मुस्लिम विवाह की तुलना
(Comparison between Hindu and Muslim Marriage)

हिन्दू विवाह एक धार्मिक संस्कार है, एक ऐसा अटूट सम्बन्ध है जिसे तोड़ना असम्भव नहीं है तो कठिन जरूर है। इसके विपरीत, मुस्लिम विवाह एक अनुबन्ध है। अनुबन्ध का अर्थ है कि विवाह एक समझौता है जिसमें दोनों पक्षों की स्वतन्त्र सहमति होना अनिवार्य है। हिन्दू और मुस्लिम विवाह की तुलना करने पर अनेक समानताएँ तथा असमानताएँ दिखाई देती हैं।

हिन्दू तथा मुस्लिम विवाह में निम्नलिखित **समानताएँ** पाई जाती हैं—

(1) बहुपत्नीत्व का प्रचलन—हिन्दू तथा मुस्लिम दोनों समाजों में बहुपत्नीत्व प्रथा का प्रचलन रहा है। एक मुसलमान एक समय में चार पत्नियाँ रख सकता है। पहले हिन्दुओं में भी बहुपत्नी विवाह का प्रचलन था परन्तु अब हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 द्वारा इसे समाप्त कर दिया गया है।

(2) विवाह के उद्देश्य—दोनों विवाहों में विवाह का उद्देश्य परिवार का निर्माण करना, प्रजनन, बच्चों को सामाजिक स्थिति प्रदान करना तथा उनका पालन-पोषण करना है।

(3) बाल विवाह का प्रचलन—हिन्दू तथा मुस्लिम दोनों प्रकार के विवाहों में बाल विवाह का प्रचलन रहा है यद्यपि सैद्धान्तिक रूप में दोनों ही इसे उचित नहीं मानते हैं।

हिन्दू तथा मुस्लिम विवाहों में निम्नलिखित आधारों पर प्रमुख **अन्तर** किए जा सकते हैं—

(1) वैवाहिक उद्देश्यों में अन्तर—हिन्दुओं में विवाह एक धार्मिक संस्कार है क्योंकि इसमें सबसे अधिक महत्त्व धर्म, फिर प्रजा (पुत्र प्राप्ति) व अन्तिम स्थान रति (शारीरिक सुख) को दिया गया है। मुस्लिम विवाह की प्रकृति में संविदात्मक पक्ष प्रबल है अर्थात् मुस्लिम विवाह एक संविदा (Contract) है जिसका उद्देश्य यौन तृप्ति तथा सन्तानों को वैध रूप प्रदान करना है।

(2) अस्थायी विवाह का प्रचलन—हिन्दू विवाह में पति-पत्नी का सम्बन्ध जन्म-जन्मान्तर का माना जाता है जो तोड़ा नहीं जा सकता। अत: अस्थायी विवाह का कोई प्रश्न ही नहीं है। इसके विपरीत, मुस्लिम विवाह में तलाक को प्रधानता दी जाती है अर्थात् यह जन्म-जन्मान्तर का सम्बन्ध नहीं माना जाता है। यहाँ तक कि इसमें अस्थायी विवाह, जिसे मुता कहते हैं, का भी प्रचलन पाया जाता है।

(3) विवाह का प्रस्ताव—हिन्दुओं में विवाह का प्रस्ताव कन्या पक्ष की ओर से रखा जाता है, जबकि मुस्लिम विवाह का प्रस्ताव वर पक्ष की से ओर से रखा जाता है।

(4) दहेज तथा मेहर—हिन्दुओं में कन्या पक्ष की ओर से वर पक्ष को धन दिया जाता है जिसे दहेज कहते हैं और जिसके अभाव में सामान्यत: विवाह नहीं होता है। मुसलमानों में वर पक्ष की ओर से कन्या को मेहर दिया जाता है जिसके अभाव में विवाह नहीं हो सकता है।

(5) पत्नियों की संख्या—हिन्दुओं में एक विवाह प्रचलित है तथा इस प्रकार बहुविवाह पर प्रतिबन्ध है। इसके विपरीत, मुसलमानों में पति एक समय में चार पत्नियाँ रख सकता है।

(6) विवाह की स्वीकृति एवं गवाह—हिन्दुओं में गवाहों के सामने वर-वधू की स्वीकृति आवश्यक नहीं है, जबकि मुसलमानों में गवाहों के समक्ष स्पष्ट स्वीकृति होना आवश्यक है।

(7) विवाह-विच्छेद—1955 ई० के बाद हिन्दुओं में विवाह-विच्छेद को कानूनी मान्यता मिलने पर भी सामाजिक मान्यता नहीं मिली है। हिन्दुओं में विवाह-विच्छेद किन्हीं विशेष परिस्थितियों के आधार पर मिल सकता है लेकिन उसके पहले न्यायिक पृथक्करण को महत्त्व दिया जाता है। यह एक कठिन प्रक्रिया है। परम्परागत रूप से हिन्दुओं में विवाह-विच्छेद का प्रावधान नहीं था। इसके विपरीत, मुसलमानों में विवाह-विच्छेद की मान्यता है तथा यह अत्यन्त सरल है। इसमें इद्दत को महत्त्व दिया जाता है तथा अदालत के बिना भी विवाह-विच्छेद हो सकता है।

(8) वैवाहिक निषेध—हिन्दुओं में सगोत्र, सप्रवर तथा सपिण्ड विवाह पर कठोर प्रतिबन्ध हैं। मुसलमानों में निषेध की प्रकृति भिन्न है। इसमें केवल अत्यन्त निकट सम्बन्धियों से ही विवाह नहीं किया जा सकता है।

(9) विधवा पुनर्विवाह—हिन्दुओं में विधवा पुनर्विवाह को कोई मान्यता प्राप्त नहीं है तथा कानून पारित होने के बाद भी विधवा पुनर्विवाह को सामाजिक मान्यता प्राप्त नहीं हो पाई है। इसके विपरीत, मुसलमानों में विधवा पुनर्विवाह पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है। मौखिक रूप से तलाक एवं अस्थायी विवाह का प्रचलन इस बात का सूचक है कि मुसलमानों में स्त्री के पुनर्विवाह पर प्रतिबन्ध नहीं है।

(10) विवाह का स्वरूप—हिन्दुओं में परम्परागत रूप से आठ प्रकार के विवाहों का प्रचलन रहा है—ब्राह्म विवाह, दैव विवाह, आर्ष विवाह, प्राजापत्य विवाह, आसुर विवाह, गान्धर्व विवाह, राक्षस विवाह तथा पैशाच विवाह। आजकल ब्राह्म विवाह तथा गान्धर्व विवाह अधिक प्रचलित हैं। मुसलमानों में निकाह, बातिल विवाह, फासिद विवाह तथा मुता विवाह का उल्लेख मिलता है।

(11) विवाह की आयु में अन्तर—हिन्दुओं में कानूनी रूप से विवाह के समय लड़के की आयु 21 वर्ष तथा लड़की की आयु 18 वर्ष का होना अनिवार्य है। मुसलमानों में आज भी नाबालिगों का विवाह संरक्षकों की सहमति से हो सकता है।

ईसाई विवाह
[CHRISTIAN MARRIAGE]

भारत में ईसाई धर्म का सर्वाधिक प्रचार 19वीं शताब्दी में अंग्रेजी शासनकाल की स्थापना के साथ ही प्रारम्भ हुआ। ईसाई धर्म में क्योंकि ऊँच-नीच की भावनाएँ (जैसी कि जाति प्रथा में पाई जाती हैं) नहीं पाई जातीं, इसलिए शीघ्र ही इसका प्रभाव भारतीय निम्न जातियों पर भी पड़ा, जिन पर अनेक प्रतिबन्ध लगे हुए थे। उच्च एवं मध्यम स्तर की जातियाँ भी ईसाई धर्म से काफी प्रभावित हुईं।

ईसाई विवाह का अर्थ
(Meaning of Christian Marriage)

ईसाई धर्म में विवाह के बारे में दो विचारधाराएँ प्रचलित हैं—**प्रथम**, प्राचीन विचारधारा, जिसके अनुसार व्यभिचार को रोकने के लिए विवाह करना उचित माना गया है, तथा **द्वितीय**, आधुनिक विचारधारा, जो विवाह को यौन सम्बन्ध एवं प्रजनन तक ही सीमित न रखकर मोक्ष प्राप्ति का सबसे उपयुक्त तरीका मानती है। प्राचीन विचारधारा के अनुसार मुक्त यौनाचार बुराई है, जबकि आधुनिक विचारधारा इसे अनिवार्य रूप में दोषपूर्ण नहीं मानती है।

उत्तरी भारत के संयुक्त चर्च के अनुसार, "विवाह स्त्री पुरुष के बीच एक ऐसी संविदा है, जो साधारणतया सम्पूर्ण जीवन की अवधि के लिए होती है, जो लैंगिक सम्बन्ध, पारस्परिक संगति तथा परिवार की स्थापना हेतु की जाती है।" कुछ विद्वान् इसे संविदा नहीं मानते क्योंकि यह व्यभिचार को रोकने का साधन माना गया है। इस सन्दर्भ में सेण्टपाल का कहना है कि पुरुष के लिए स्त्री तथा स्त्री के लिए पति आवश्यक है। यदि विधवा यौन व्यभिचार से नहीं बच सकती तो वह भी शादी कर सकती है। अगर कोई व्यक्ति अपने पर पूर्ण काबू कर लेता है तथा ब्रह्मचर्य का जीवन बिताना चाहता है तो इसमें कोई बुराई नहीं है। दूसरी ओर, यह बात भी उल्लेखनीय है कि ईसाई विवाह कोई धार्मिक रहस्य लिए हुए भी नहीं है यद्यपि ईसाई धर्म के अनुसार विवाह का उद्देश्य केवल यौन-सन्तुष्टि ही न होकर मानसिक, आध्यात्मिक एवं शारीरिक भी होता है।

ईसाई विवाह के उद्देश्य
(Aims of Christian Marriage)

ईसाई विवाह के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

(1) यौन सन्तुष्टि—ईसाई विवाह का प्रथम उद्देश्य, अन्य विवाहों की भाँति यौन सन्तुष्टि है क्योंकि यह स्त्री पुरुष को पति-पत्नी के रूप में साथ रहकर यौन सन्तुष्टि का स्वीकृत आधार प्रस्तुत करता है तथा इस प्रकार उन्हें अनैतिकता से बचाता है।

(2) परिवार का निर्माण—ईसाई विवाह का दूसरा उद्देश्य परिवार की स्थापना करना है। ईसाई धर्म में परिवार को चर्च एवं समाज की एक मूल इकाई माना गया है तथा प्रत्येक परिवार किसी-न-किसी चर्च का सदस्य होता है।

(3) प्रजनन—ईसाई विवाह का तीसरा उद्देश्य प्रजनन अर्थात् सन्तानोत्पत्ति है। बच्चों को पैदा करना, उसका पालन-पोषण करना तथा उन्हें सामाजिक प्रस्थिति प्रदान करना विवाह का मुख्य उद्देश्य माना जाता है।

(4) जीवन का विकास—ईसाई विवाह का एक अन्य उद्देश्य पारस्परिक प्रेम द्वारा व्यक्तित्व को पूर्णत: प्रदान करके जीवन का विकास करना है। कुछ लोग इसे पवित्र व ईश्वर द्वारा स्थापित व्यवस्था मानते हैं।

(5) स्थायित्व प्रदान करना—ईसाई विवाह का अन्तिम उद्देश्य पति-पत्नी के मध्य सम्बन्धों को स्थायी बनाकर, उन्हें व्यभिचार से बचाने एवं इस प्रकार समाज में स्थायित्व बनाए रखने में सहायता प्रदान करना है। ईसाई धर्म में भी एक-दूसरे की सहायता करना तथा दु:ख-सुख में एक-दूसरे के काम आना विवाह का परम उद्देश्य माना गया है।

ईसाई विवाह के संस्कार
(Rituals of Christian Marriage)

ईसाई विवाह पद्धति अपेक्षाकृत सरल है। पश्चिमी देशों में लड़का-लड़की स्वयं एक-दूसरे का चयन करते हैं, परन्तु भारत में सामान्यत: हिन्दुओं की तरह लड़की के माता-पिता पहले लड़के की खोज करते हैं। यह शायद ईसाइयों पर हिन्दू संस्कृति के प्रभाव के कारण है। ईसाइयों में स्वयं एक-दूसरे का चयन करना भी बुरा नहीं माना जाता। लड़की के चयन में सामान्यत: सामाजिक स्थिति, शिक्षा का स्तर, व्यक्तित्व, पारिवारिक स्थिति व रक्त सम्बन्धों जैसी बातों पर विशेष ध्यान दिया जाता है। लड़की का चयन कर लेने के पश्चात् सम्पूर्ण प्रक्रिया दो भागों में होती है—(अ) मँगनी तथा (ब) विवाह।

लड़की-लड़के का विवाह के लिए चयन कर लेने के पश्चात् मँगनी अथवा सगाई के लिए सूचना पादरी को दे दी जाती है। अगर दोनों परिवार अलग-अलग चर्चों के सदस्य हैं तो दोनों पादरियों को सूचित कर दिया जाता है तथा उनकी अनुमति ली जाती है। इनमें अनुमति की भी एक अनुपम प्रणाली पाई जाती है। पादरी

लगातार तीन इतवारों को प्रार्थना के लिए एकत्रित सदस्यों (कालीसिया) को सूचना देता है कि अमुक लड़के की शादी अमुक लड़की से होनी निश्चित हुई है, अगर इस सम्बन्ध में किसी को कोई एतराज हो तो वह अपना एतराज पेश कर सकता है। अगर कोई एतराज नहीं करता तो मँगनी के लिए दिन व समय तय कर लिया जाता है। दोनों के माता-पिता मँगनी के लिए अपने परिचितों को आमन्त्रित करते हैं तथा वर पक्ष मँगनी के समय अँगूठी नारियल, मिठाई व वस्त्र आदि लेकर वधू के घर जाते हैं, वर-वधू को एक स्थान पर बिठाया जाता है और दोनों से विवाह की स्वीकृति लेकर पादरी बाइबिल के कुछ पाठ पढ़ता है। लड़का लड़की को अँगूठी, नारियल, बाइबिल व कुछ अन्य सामान देता है। इसी प्रकार का सामान वधू पक्ष द्वारा वर को दिया जाता है। पादरी एक-दूसरे को अँगूठियाँ पहनाता है और मँगनी की घोषणा करता है।

मँगनी के पश्चात् विवाह की तिथि तथा समय तय किया जाता है और दोनों पक्ष निर्धारित समय पर अपने नातेदारों एवं परिचितों के साथ चर्च में एकत्रित होते हैं। पादरी विवाह की स्वीकृति के लिए रहता है। वह दोनों को सम्बोधित करता हुआ कहता है कि "मैं! तुम दोनों को नसीहत देता हूँ कि तुम बड़ी अदालत (खुदा के दरबार में) के दिन, जबकि सबके दिलों के भेद खुलेंगे जवाब दोगे। अगर तुम दोनों में से कोई ठीक कारण जाने, जिसके कारण तुम्हारा, आपस में विवाह करना धर्म के अनुसार न हो सके, तो अब उसको स्पष्ट करो, क्योंकि तुमको यह पता होना चाहिए कि अगर कोई धर्म के विरुद्ध, जिसका बयान ईश्वर की कलम में है, शादी करता है तो वह भगवान के नजदीक जोड़ा नहीं है और न ही उनकी शादी हुई है।" वर वधू इसकी स्वीकृति देते हैं और प्रतिज्ञा करते हैं कि वे आजीवन विवाह के पवित्र बन्धन को निभाएँगे। पादरी वर से कहता है, "क्या तुम अमुक औरत को भगवान तथा इन गवाहों के सम्मुख अपनी पत्नी बनाना स्वीकार करते हो?" वर के उत्तर प्राप्ति के पश्चात् वह फिर कहता है, "क्या तुम इस बात का वचन देते हो कि विवाह की पवित्र हालत में इसके साथ जीवन व्यतीत करोगे। जीवन के हर पहलू, दु:ख, दर्द, खुशी, रंज, तंगी सभी परिस्थितियों में पत्नी के साथ प्रेमपूर्वक व्यवहार करोगे। एक अच्छे पति की भाँति सभी बातों में उससे वफादारी करोगे और सबका साथ छोड़कर पत्नी का साथ दोगे तथा जब तक मृत्यु ही पृथक् न करे, इसका साथ नहीं छोड़ोगे।" इसी तरह के प्रश्न वधू से भी पूछे जाते हैं तथा फिर पादरी दोनों के विवाह अर्थात् पति-पत्नी होने की घोषणा करता है और दोनों को आशीर्वाद देता है। अगर कोर्ट मैरिज (प्रेम विवाह) हुई है तो वर-वधू पादरी का आशीर्वाद लेने के लिए चर्च जाते हैं। पादरी विवाह का प्रमाण-पत्र देता है तथा उपस्थित लोग उन्हें तोहफे देते हैं।

ईसाई विवाह के सन्दर्भ में चार बातें उल्लेखनीय हैं—**प्रथम**, दोनों को यह प्रमाण-पत्र देना पड़ता है कि दोनों ईसाई हैं; **द्वितीय**, चर्च की सदस्यता का प्रमाण-पत्र दिखना पड़ता है; **तृतीय**, दोनों को एक-दूसरे के चरित्र का प्रमाण दिखाना आवश्यक है; तथा **चतुर्थ**, विवाह के लिए प्रार्थना-पत्र विवाह की निश्चित तिथि से कम-से-कम तीन सप्ताह पहले देना अनिवार्य है।

आधुनिक युग में आधुनिक विचारों से ओत-प्रोत ईसाई इस प्रकार (चर्च विवाह) को महत्त्व न देकर सिविल मैरिज को अच्छा मानने लगे हैं जिसे अदालत में जाकर सम्पन्न किया जाता है। इस प्रकार के विवाह में लड़की एवं लड़के को विवाह के एक माह पूर्व रजिस्ट्रार ऑफिस में विवाह हेतु प्रार्थना-पत्र देना होता है जिसमें यह प्रमाणित करना पड़ता है कि दोनों वयस्क हैं। रजिस्ट्रार द्वारा होने वाले विवाह की सूचना दोनों पक्षों को कर दी जाती है। यदि दोनों पक्ष एक माह के भीतर किसी भी प्रकार की असहमति व्यक्त नहीं करते तो एक माह पश्चात् लड़के एवं लड़की (वर-वधू) को रजिस्ट्रार के यहाँ पहुँचकर रजिस्टर पर हस्ताक्षर करने होते हैं जो सामान्यत: दो गवाहों के समक्ष होते हैं। हस्ताक्षर के पश्चात रजिस्ट्रार वर-वधू को पति-पत्नी होने का प्रमाण-पत्र दे देता है तथा दोनों को बधाइयाँ देता है। फिर वर-वधू गिरजाघर जाकर पादरी को विवाह की सूचना दे देते हैं और उसका आशीर्वाद प्राप्त करते हैं। इस प्रकार ईसाइयों में सिविल मैरिज को भी मान्यता प्राप्त है।

ईसाइयों में विवाह-विच्छेद
(Divorce among Christians)

विवाह-विच्छेद से अभिप्राय वैवाहिक सम्बन्धों को समाप्त करना है। ईसाई धर्म विवाह- विच्छेद की अनुमति नहीं देता क्योंकि विवाह के समय पति-पत्नी से जीवन भर सुख-दु:ख एवं आपत्तियों के समय एक-दूसरे का साथ देने का वचन लिया जाता है। बाइबिल में भी विवाह-विच्छेद के विरुद्ध प्रमाण मिलते हैं। **सन्त मैथ्यू** के अनुसार अगर कोई व्यक्ति अपनी स्त्री को व्यभिचारिणी होने के कारणों के अलावा अन्य किसी

कारणवश छोड़ता है और दूसरी शादी करता है, तो वह व्यभिचार करता है और जो उस छोड़ी हुई स्त्री से शादी करता है वह भी व्यभिचार करता है। परन्तु व्यावहारिकता इसके विपरीत है तथा पश्चिमी देशों (जिनमें अधिकांशत: जनसंख्या ईसाइयों की है) में विवाह-विच्छेद तथा तलाक की दर निरन्तर बढ़ती जा रही है।

भारत में 1869 ई० में पारित विवाह-विच्छेद अधिनियम सभी भारतीय ईसाइयों पर लागू होता है। इस अधिनियम को 14 भागों में बाँटा गया है तथा इसमें 62 धाराएँ व 14 अनुसूचियाँ संलग्न हैं। धारा 10 से धारा 17 विवाह-विच्छेद से सम्बन्धित हैं। इस अधिनियम में निम्नलिखित सुविधाएँ प्रदान की गई हैं—

(1) विवाह-विच्छेद—पत्नी जिन आधारों पर पति से विवाह-विच्छेद की माँग कर सकती है वे निम्न प्रकार हैं—

(i) यदि पति ने ईसाई धर्म का परित्याग कर दूसरा धर्म स्वीकार कर लिया हो तथा दूसरी शादी कर ली हो,

(ii) पति ने निषिद्ध सम्बन्धों के अन्तर्गत आने वाली किसी स्त्री से यौन सम्बन्ध स्थापित कर लिया हो,

(iii) पति ने कई शादियाँ कर ली हों,

(iv) पति दूसरी स्त्री के साथ व्यभिचार का अपराधी हो,

(v) पति बलात्कार, अप्राकृतिक, सहलिंगी-सहवास या पशुता का अपराधी हो,

(vi) पति क्रूर व्यवहार करता हो तथा

(vii) पति ने कम-से-कम दो वर्ष से पत्नी का परित्याग कर रखा हो।

(2) विवाह की अवैधता—कोई भी व्यक्ति (पति अथवा पत्नी) अपनी शादी को अवैध घोषित कराने के लिए प्रार्थना-पत्र दे सकता है। यह निम्न आधारों पर किया जा सकता है—

(i) यदि दूसरा पक्ष विवाह के समय तथा प्रार्थना-पत्र देते समय नपुंसक है,

(ii) यदि दूसरा पक्ष निषेधात्मक रक्त सम्बन्धी या विवाह सम्बन्धी है तथा

(iii) दोनों पक्षों में से विवाह के समय कोई सा पागल या विवाह के समय दूसरी पत्नी या पति जीवित था।

(3) न्यायिक पृथक्करण—यह परिणाम क्रूरता एवं व्यभिचार के आधार पर किया जा सकता है। वैधानिक तौर पर न्यायिक पृथक्करण जितने समय के लिए दिया जाता है यह उतने समय के लिए विवाह-विच्छेद ही समझा जाता है, परन्तु वास्तविक विवाह-विच्छेद इस अवधि के पूर्ण होने के पश्चात् ही हो सकता है।

(4) सुरक्षा आज्ञा—इस अधिनियम के अनुसार पत्नी अपने सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकरों की माँग करती है। विवाह-विच्छेद अधिनियम की धाराओं में से दो बातें उल्लेखनीय हैं जिनको विशेष महत्त्व दिया गया है—

(i) पति का आचरण (अर्थात् अनुचित यौन सम्बन्ध) तथा

(ii) पत्नी के जीवित होने पर दूसरी शादी कर लेना।

जनजातीय विवाह
[TRIBAL MARRIAGE]

भारतीय समाज व संस्कृति को जनजातियाँ निराली छवि प्रदान करती हैं। भारत में 532 जनजातियाँ निवास करती हैं तथा इनकी जनसंख्या कुल जनसंख्या का लगभग सात प्रतिशत है। जनजातियों को 'वन्य जाति', 'आदिवासी', 'आदिम जाति', 'गिरिजन' आदि अनेक नामों से पुकारा जाता है। **घुरिये** (Ghurye) ने इन्हें 'पिछड़े हिन्दू' भी कहा है। वास्तव में, जनजाति व्यक्तियों का एक वह समूह है जो निश्चित भौगोलिक क्षेत्र में निवास करता है या विचरण करता है, किसी एक पूर्वज से अपना उद्‌गम मानता है, जिसकी एक सामान्य संस्कृति होती है और जो आज भी आधुनिक सभ्यता के प्रभावों से सापेक्षिक रूप से वंचित है। जनजातीय संस्कृति आज भी अपनी अनेक विशिष्टताएँ बनाए हुए है।

जनजातीय विवाह का अर्थ
(Meaning of Tribal Marriage)

अन्य सभी समाजों की तरह, जनजातीय समाजों में भी विवाह की संस्था पाई जाती है। परन्तु यह स्थानीयता के कारण ग्रामीण और नगरीय समाज में भिन्न और अनोखी ही है। इनके वैवाहिक संस्कार भी कुछ ऐसी विशेषताएँ लिए हुए हैं जो भारत के अन्य लोगों की वैवाहिक व्यवस्था से इन्हें पूर्णत: अलग कर देते हैं।

जनजातियों में विवाह केवल यौन इच्छा की सन्तुष्टि की भावना को लेकर नहीं किया जाता वरन् यह अनेक आर्थिक और सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति भी करता है। उदाहरणार्थ, सेमा नागाओं में व्यक्ति को पैतृक सम्पत्ति को प्राप्त करने के लिए अपने पिता की विधवा पत्नी (अपनी माँ को छोड़कर) से विवाह करना पड़ता है, क्योंकि इनके जनजातीय कानून के अनुसार एक व्यक्ति की सम्पत्ति का उत्तराधिकार उसकी विधवाओं को मिलता है।

वास्तव में, जनजातियों को अस्तित्व रक्षा के लिए कठोर संघर्ष करना पड़ता है। इसके लिए परिवार की रचना की जाती है, ताकि मिलकर संघर्ष को झेला जा सके। साथ ही, **डी० एन० मजूमदार** एवं **टी० एन० मदन** (D. N. Majumdar and T. N. Madan)[21] का कहना है कि कुछ जनजातियों की अर्थव्यवस्था उभय-लिंगीय सदस्यों के बीच सहयोग एवं श्रम-विभाजन पर इतनी अधिक आश्रित होती है कि स्थायी क्रियाशीलता को सम्भव बनाने हेतु पुरुष और स्त्री को समाज द्वारा स्वीकृत किसी-न-किसी प्रकार के स्थायी या अर्ध-स्थायी सम्बन्ध का विकास अपने बीच करना ही पड़ता है, अर्थात् इन्हें विवाह बन्धन में बँधना ही पड़ता है। उदाहरणार्थ, कादर जनजाति की सीमित खाद्य-संकलन अर्थव्यवस्था और अण्डमान द्वीपवासियों व मारिया गोंडों में रोजमर्रा के आर्थिक क्रियाकलापों में महिला द्वारा पूरी तरह भाग लेने की आवश्यकता पुरुष और स्त्री के बीच विवाह को अनिवार्य बना देती है।

अत: जनजातियों में विवाह का उद्देश्य यौन-सन्तुष्टि ही नहीं अपितु आर्थिक दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है। **मरडॉक** (Murdock) ने संसार के विभिन्न 250 जनजातीय समूहों के वैवाहिक उद्देश्यों के अध्ययन के पश्चात् निष्कर्ष निकाला है कि इनमें विवाह के निम्नलिखित तीन उद्देश्य होते हैं—

(1) यौन सम्बन्धी इच्छाओं की तृप्ति,

(2) आर्थिक सहयोग तथा

(3) बच्चों का प्रजनन और पालन-पोषण।

मरडॉक का मत है कि कोई भी आदिम समाज ऐसा नहीं है जहाँ विवाह केवल यौन सन्तुष्टि के उद्देश्य से ही किया जाता हो वरन् सभी जनजातियों में विवाह तीनों ही उद्देश्यों को लेकर किए जाते हैं। वस्तुत: यौन-सन्तुष्टि जहाँ विवाह के मूल में निहित प्रमुख अन्त:प्रेरणा है, वहीं पर बच्चों के पालन-पोषण की विश्वसनीय व्यवस्था, आर्थिक सहयोग एवं संस्कृति के हस्तान्तरण की आवश्यकता भी इसमें निहित अन्य महत्त्वपूर्ण प्रेरणाएँ मानी जाती हैं। इसीलिए **मजूमदार** एवं **मदन** ने ठीक ही लिखा है कि "विवाह से वैयक्तिक स्तर पर शारीरिक (यौन) और मनोवैज्ञानिक (सन्तान प्राप्ति) सन्तोष प्राप्त होता है, तो व्यापक सामूहिक स्तर पर इससे समूह और संस्कृति के अस्तित्व-निर्वाह में योग मिलता है।"

जनजातियों में विवाह की आयु, दहेज, वधू-मूल्य और स्त्रियों की प्रस्थिति
(Age of Marriage among Tribes, Dowry, Bride-Price and Status of Women)

विवाह की आयु की दृष्टि से भारतीय जनजातियाँ सामान्य भारतीय समाज के पूर्णत: अनुरूप रही हैं। साधारणत: सभी जनजातियों में विवाह बचपन में ही कर दिया जाता है। हम यह कह सकते हैं कि इनमें पूर्णत: बाल विवाह की प्रथा प्रचलित है। उदाहरण के लिए, सन्थाल, मुण्डा, उराँव, गोंड, बैगा, कौल आदि जनजातियों में सामान्यत: लड़कों की वैवाहिक आयु बारह से चौदह वर्ष और लड़कियों की नौ से दस वर्ष के बीच होती है। कुछ जनजातियों में वैवाहिक आयु पाँच से सात वर्ष के बीच ही है। इस आयु के बाद जनजातियों में विवाह उचित नहीं होता। कठोर सामाजिक बन्धनों के कारण सभी लोगों को इन नियमों का पालन करना पड़ता है। भारतीय जनजातियों में केवल नागा और कुकी जनजातियाँ ही ऐसी जनजातियाँ हैं, जिनमें विवाह की आयु पन्द्रह से पच्चीस वर्ष के बीच है। परन्तु आजकल जैसे-जैसे जनजातीय लोगों का ग्रामीण एवं नगरीय लोगों से सम्पर्क स्थापित होता जा रहा है, इनमें भी विवाह की आयु में वृद्धि होती जा रही है। परन्तु फिर भी, इनमें विवाह की आयु अभी अपेक्षाकृत कम ही है।

आधुनिक भारतीय समाज में जो दहेज का रूप है वह जनजातीय समाज में नहीं पाया जाता है। प्राय: जनजातियाँ आर्थिक दृष्टि से गरीब होती हैं इसलिए वैसे भी दहेज का लेन-देन उनके लिए सम्भव नहीं है। सभ्य समाज से सम्पर्क के कारण अब जनजातियों में भी यह प्रथा प्रचलित हो गई है परन्तु अभी भी इसका प्रभाव

21. डी० एन० मजूमदार तथा टी० एन० मदन, वही, पृष्ठ 69.

नगण्य ही है। जहाँ तक जनजातीय स्त्रियों की सामाजिक स्थिति का प्रश्न है उनकी दशाएँ भारतीय वधुओं की तरह सेविका और दासी जैसी नहीं हैं। वे सामाजिक-आर्थिक रूप से प्रतिष्ठित हैं और उन्हें व्यक्तित्व के विकास का पूरा अवसर प्राप्त होता है। भारत की बहुत-सी जनजातियों में स्त्रियाँ कृषि और अन्य आर्थिक कार्यों में महत्त्वपूर्ण सहयोग देती हैं। वे हेय और सन्तानोत्पत्ति का आधार-मात्र नहीं हैं। कहीं-कहीं तो स्त्रियों को पुरुषों से भी अच्छी प्रतिष्ठा मिली हुई है। वास्तव में, जनजातीय जीवन में स्त्रियाँ सहधर्मिणी होती हैं क्योंकि कठोर जीवन के संघर्षों के बीच उनका आर्थिक सहयोग महत्त्वपूर्ण है।

भारतीय जनजातीय जीवन में दहेज प्रथा के विपरीत प्राय: वधू-मूल्य की प्रथा प्रचलित है। इस प्रथा के अनुसार अनिवार्य रूप से वर या उसका पिता वधू के पिता को एक निश्चित रकम देता है, जो नकद या वस्तुओं के रूप में हो सकती है। प्राय: यह वधू-मूल्य उपहारों के रूप में दिया जाता है। वधू-मूल्य कुछ जनजातियों में परम्परागत रूप से निश्चित होता है और कहीं-कहीं पर यह कन्या-पक्ष के मध्यस्थ द्वारा निश्चित किया जाता है। उदाहरण के लिए, जौनसार बाबर की 'खस' जनजाति में वधू-मूल्य परम्परा से निश्चित है, जबकि 'हो' जनजाति में यह कन्या पक्ष द्वारा तय किया जाता है। ज्यों-ज्यों मुद्रा का प्रसार जनजातियों में होता जा रहा है, वधू-मूल्य भी नकद रूप में दिया जाने लगा है। बिहार की मुण्डा जनजाति में यह प्रथा इतनी प्रचलित है कि सभ्य भारतीय समाज की दहेज प्रथा की तरह यह भी एक समस्या बन गई है। वधू-मूल्य भी व्यक्ति की सामाजिक-आर्थिक प्रतिष्ठा के अनुसार माँगा जाता है। इसका प्रभाव लड़कियों, लड़कों के कुँवारे रह जाने और विलम्ब विवाह के रूप में पड़ता है। वधू-मूल्य प्रथा को कन्या-विक्रय नहीं समझना चाहिए क्योंकि इन दोनों में अन्तर है। वधू-मूल्य यद्यपि कन्या-विक्रय का रूप ले सकता है, तथापि वधू-मूल्य वह प्रथा है जिसमें वर द्वारा कन्या के परिवार को भेंट, विनिमय के रूप में दी जाती है। आमतौर से वर का पिता अपने रिश्तेदारों और दोस्तों से भेंट लेकर वधू के पिता को देता है और वधू का पिता इसे अपने बन्धु-बान्धवों में बाँट देता है। धीरे-धीरे यह प्रथा भी समाप्त होती जा रही है।

जनजातियों में विवाह सम्बन्धी निषेध
(Prohibitions regarding Marriage among Tribals)

जनजातियों में विवाह की संस्था को स्थिरता प्रदान करने के लिए कुछ नियमों और निषेधाज्ञाओं की व्यवस्था है। ये निम्नलिखित हैं—

(1) निकटाभिगमन निषेध (Incest taboo)—इसे निषिद्ध निकटाभिगमन भी कहा जाता है। इस निषेध के अनुसार जनजातियों में निकट के सम्बन्धियों में यौन सम्बन्ध स्थापित करना वर्जित है। जनजातियों में यह नियम सर्वमान्य या एक समान नहीं है। वैसे पिता-पुत्री का, माता-पुत्र का तथा भाई-बहन का वैवाहिक निषेध सर्वमान्य है। इसमें केवल एक ही अपवाद कहा जा सकता है कि हिन्दू समाज व्यवस्था में जहाँ सौतेली माँ को माता का दर्जा दिया जा सकता है, जनजातियों में सौतेली माँ से विवाह तक किया जा सकता है। जैसे—नागाओं में व्यक्ति को सम्पत्ति पर उत्तराधिकार पाने के लिए, सगी माँ को छोड़कर, सौतेली माँ से विवाह करना पड़ता है। भाई-बहन का विवाह निषिद्ध है परन्तु इसके बारे में भी कुछ अपवाद जनजातियों में देखने को मिलता है। साधारणत: भारतीय जनजातियों में पिता-पुत्री, माता-पुत्र, भाई-बहन, मामा-भानजी से सम्बन्ध निषिद्ध श्रेणी में आते हैं। **रैडक्लिफ-ब्राउन** (Radcliffe-Brown) का कहना है कि निकटाभिगमन निषेध निकट सम्बन्धियों (पिता-पुत्री, माता-पुत्र, भाई-बहन आदि) में यौन सम्बन्धों की समीपता से सम्बन्धित पाप अथवा अपराध माना जाता है। इस नियम के दो प्रमुख कारण हैं—**प्रथम**, यह कि जनजातियों में सहयोगी परिवार विकसित हों जिनमें बच्चों का पालन-पोषण और आर्थिक विकास हो सके। अगर ऐसा न हो तो परिवार के सदस्यों के परस्पर सम्बन्धों एवं भूमिकाओं में भ्रम पैदा हो जाएगा और इससे अस्त-व्यस्तता आ जाएगी। इतना ही नहीं, इससे परिवार का सम्पूर्ण वातावरण संघर्षमय हो जाएगा; और **दूसरा,** स्त्री-पुरुष के यौन सम्बन्धों को ऐसा नियमित किया जाए कि इससे विभिन्न परिवारों में भी स्थिर और पारस्परिक सम्बन्धों का निश्चित विकास हो सके। पहला उद्देश्य व्यक्तिगत जीवन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कहा जा सकता है।

(2) बहिर्विवाह (Exogamy)—निषेधों की दृष्टि से जनजातियों में बहिर्विवाह का भी प्रचलन है। इसके अनुसार एक व्यक्ति अपने समूह के बाहर ही विवाह कर सकता है अर्थात् व्यक्ति अपनी जनजाति में गोत्र या टोटम, भ्रातृदल एवं परिवार समूह के बाहर विवाह कर सकता है अर्थात् बहिर्विवाह का सीधा अर्थ है कि अपने

उस समूह में विवाह नहीं किया जा सकता जिसकी समाज द्वारा अनुमति नहीं है। दूसरे गाँव में विवाह करना, अपने गोत्र को छोड़कर दूसरे भ्रातृदल में विवाह करना आदि सभी जनजातियों में प्राय: मिलते हैं। इस निषेध का भी कड़ाई से पालन किया जाता है। प्राय: जनजातीय व्यक्ति अपना जीवनसाथी दूसरे गोत्र से प्राप्त करते हैं। उदाहरण के लिए, खासी जनजाति में बहिर्विवाह के नियम को तोड़ना अपराध है। छोटा-नागपुर की मुण्डा तथा अन्य जनजातियाँ भी इसी नियम को मानती हैं जिससे गाँव के पुरुष अपने गाँव की लड़कियों से विवाह नहीं कर सकते। असम की नागा तथा दक्षिण भारत की इरूला आदि जनजातियाँ भी कई बहिर्विवाह वर्गों में विभक्त हैं। बिहार की मुण्डा जनजाति में ऐसे विवाह पर गाँव से निष्कासन कर दिया जाता है जिसे 'विटलहा' कहते हैं। लुशाई और कुकी जनजातियों में भी यही मान्यता है। साधारण रूप में बहिर्विवाह का निषेध भारत में प्राय: अधिकांशत: जनजातियों में पाया जाता है। जनजातियों में ऐसे विवाह के कारणों के बारे में विद्वानों ने अलग-अलग विचार व्यक्त किए हैं। **लॉवी** (Lowie) और **हॉबहाउस** (Hobhouse) इस मत को मानते हैं कि नजदीकी रिश्तों में यौन सम्बन्ध स्थापित होने से बचने की भावना मूलप्रवृत्यात्मक है। **रिजले** (Risley) ने इसका प्रमुख कारण नवीनता की भावना को माना है अर्थात् जानी-पहचानी स्त्रियों से पुरुष विवाह नहीं करता जबकि **रिचर्ड्स** (Richards) ने इसका ऐतिहासिक कारण बताया है। इनके अनुसार आखेट युग में जनजातियाँ घुमन्तू जीवन व्यतीत करती थीं। उस समय भोजन की समस्या विकट होने के कारण स्त्रियाँ साथ नहीं जा सकती थीं, वैसे भी स्त्रियों को बोझ समझा जाता था। प्राय: पुरुष बाहर के समूहों में यौन सम्बन्ध स्थापित करता था।

(3) अन्तर्विवाह (Endogamy)—जनजातीय जीवन में पाए जाने वाले निषेधात्मक नियमों में अन्तर्विवाह का भी नियम लागू है। यह बहिर्विवाह के बिलकुल विपरीत है। इसमें एक व्यक्ति अपने समूह में ही विवाह कर सकता है व समूह के बाहर विवाह की अनुमति नहीं है। जिन जनजातियों में यह निषेध लागू है वहाँ कड़ाई से इसका पालन किया जाता है। भारत में अधिकांश जनजातियाँ अन्तर्विवाही समूह हैं। इसका सामान्य अर्थ यह है कि व्यक्ति द्वारा उस निर्धारित समूह में विवाह करना जिसका कि वह सदस्य है। यह समूह अपनी जाति, जनजाति और कभी-कभी गोत्र भी हो सकता है। वैसे भारत की आदिम जातियों में स्थानीय अन्तर्विवाह और गोत्र अन्तर्विवाह के उदाहरण बहुत कम हैं। टोडा जनजाति के गोत्र तारथरोल और तिवालियल अन्तर्विवाही समूह हैं। भील जनजातियों में भी 'उजले भील' और 'मैले भील' इस नियम को मानते हैं। कादर एवं बैगा आदि भी इस नियम का पालन करते हैं। जनजातियों में जहाँ तक ऐसे विवाह के कारणों का प्रश्न है, उसका एक कारण अपरिचित के प्रति भय की भावना है। उसका दूसरा कारण अन्धविश्वास और जादू-टोने का डर है। बाहर के लोगों से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने से तथा उनके द्वारा जादू-टोने से हानि हो सकती है अत: अपने समूह में ही विवाह करना उचित माना जाता है। कोरवा जनजाति में ऐसा विवाह इसी कारण से है। तीसरा कारण अपनी संस्कृति की विशेषता को बनाए रखने की इच्छा भी है क्योंकि इन भिन्नताओं के कारण जनजातियों में ऐसी विशिष्टता पैदा हो जाती है कि वे परस्पर मिल नहीं पातीं। इसका चौथा कारण भौगोलिक अलगाव है जिससे ये समूह में ही विवाह करते हैं।

(4) अधिमान्य विवाह (Preferential marriage)—वैवाहिक सम्बन्धों की दृष्टि से जनजातीय समाजों में ही नहीं वरन् सभ्य हिन्दू समाजों में भी विवाह व्यक्तिगत मामला न होकर सामाजिक जरूरत के दृष्टिकोण पर आधारित है। यह दो परिवारों के मिलन का आधार है जिसके कारण सम्बन्ध निश्चित और ज्यादा दृढ़ हो जाते हैं। विवाह में स्त्री-पुरुष को केवल पति या पत्नी ही प्राप्त नहीं होती वरन् उसके आधार पर अनेक ऐसे रिश्ते-नाते भी प्राप्त होते हैं जो सुख-दु:ख के साथी होते हैं। यह नातेदार जीवन व्यतीत करने में, संघर्षों से मुकाबला करने में तथा आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने में सहयोगी होते हैं। इस दृष्टिकोण के कारण हर समाज में कुछ ऐसे अलिखित नियमों की रचना होती है कि व्यक्ति किससे विवाह करे जो ज्यादा लाभदायक होगा। साधारणत: जब किसी व्यक्ति को किसी अन्य व्यक्ति से विवाह करने का विशेषाधिकार प्राप्त होता है या सामाजिक दृष्टि से उस विवाह का होना उचित माना जाता है और अधिक पसन्द किया जाता है तो ऐसे विवाह को अधिमान्य विवाह कहा जाता है। इसे अधिमान्य हम इस दृष्टि से भी मान सकते हैं कि विवाह के मामले या जीवनसाथी के चुनाव के मामले में कुछ व्यक्तियों को अन्यों की तुलना में प्रमुखता या अधिमान्यता दी जाती है। भारतीय जनजातीय समाजों में भी अधिमान्य विवाह प्रचलित हैं। इसके प्रमुख रूप निम्नलिखित हैं—

(i) ममेरे तथा फुफेरे भाई-बहनों का विवाह (Cross cousin marriage)—इसे विलिङ्ग सहोदरज विवाह भी कहते हैं। भारत की कुछ जनजातियों में प्राय: भाई-बहन के बच्चों के विवाहों को प्रमुखता दी जाती

है। वैवाहिक पक्ष में चूँकि ममेरे-फुफेरे भाई-बहन होते हैं अत: पूर्वोक्त नाम दिया जाता है। जनजातीय उदाहरणों में मणिपुर में पुरम कुकी जनजाति में मामा की लड़की से विवाह करना बड़ा उत्तम समझा जाता है। 1936 ई० में ऐसे विवाहों का सर्वेक्षण **प्रो० ताराचन्द दास** द्वारा किया गया था जिसमें पचहत्तर प्रतिशत विवाह इसी प्रकार के थे। **ग्रियर्सन** के अनुसार मध्य प्रदेश की गोंड जनजाति में भी चौवन प्रतिशत विवाह इसी प्रकार के हैं। खरिया, कादर खासी तथा उराँव जनजातियों में भी ऐसे विवाह को अधिमान्यता दी जाती है। असम की मिकिर जनजाति और भीलों में यह प्रथा लोकप्रिय है। मध्य भारतीय क्षेत्र की कुछ जनजातियों में यह प्रथा इतनी महत्त्वपूर्ण है कि यदि कोई पक्ष ऐसे विवाह से इनकार करता है तो उसे दूसरे पक्ष को जुर्माना देना पड़ता है। गोंड जनजाति में इस प्रथा को **'दूध लौटावा'** कहते हैं।

(ii) चचेरे एवं मौसेरे भाई-बहनों का विवाह (Parallel cousin marriage)—इसे सलिङ्ग सहोदरज विवाह भी कहा जाता है। जनजातियों में मान्यता प्राप्त अधिमान्य विवाह का दूसरा रूप चचेरे एवं मौसेरे भाई-बहनों का विवाह है। साधारण रूप से जब दो भाइयों की सन्तानें या दो बहनों की सन्तानें परस्पर विवाह करती हैं तो यह विवाह उपर्युक्त नाम से जाना जाता है। इसमें चाचा के लड़के या लड़की से और मौसा के लड़के या लड़की से विवाह किया जाता है। वैसे भारतीय जनजातियों में यह प्रथा अधिकांशत: नहीं पाई जाती परन्तु संसार की अन्य जनजातियों में (जैसे अरब की बेडोइन जनजाति में) यह विवाह अन्य विवाहों से उत्तम समझा जाता है।

(iii) पति-भ्राता विवाह (Levirate)—अधिमान्य विवाह का यह भी एक रूप है जो भारत की अनेक जनजातियों में किसी-न-किसी रूप में मान्य है। भारत की कुछ जनजातियों में स्त्री को यह अधिकार होता है कि वह पति के मर जाने पर उसके भाई से विवाह कर सकती है। जब एक विधवा स्त्री अपने पति के भाई से विवाह करती है तो उसे पति-भ्राता विवाह कहते हैं। इसके दो रूप देखने को मिलते हैं—**एक**, जब स्त्री अपने मृत पति के छोटे भाई अर्थात् देवर (Junior levirate) से विवाह करती है, और **दूसरा**, जब स्त्री मृत पति के बड़े भाई अर्थात् जेठ (Senior levirate) से विवाह करती है। ऐसे विवाहों की अनुमति और मान्यता प्राय: भारत की अनेक जनजातियों में है। कुछ हिन्दुओं में भी यह प्रथा प्रचलित है जिसे **'चादर डालना'** कहते हैं। इसके साथ-ही-साथ जनजातीय समूहों में इसका एक और रूप भी देखने को मिलता है कि कुछ जनजातियों में स्त्री पति के मृत होने के बाद नहीं, वरन् विवाह के साथ ही पति के छोटे भाइयों (देवरों) की पत्नी बन जाती है या पति के सभी बड़े-छोटे भाई उस स्त्री के पति होते हैं। अनेक जनजातियों में यह प्रथा स्त्री या विधवा की इच्छा पर निर्भर है। कोरू, थारू, खस और भील जनजातियों में यह प्रथा प्रचलित है।

(iv) साली विवाह (Sororate)—जनजातीय समाज में अधिमान्य विवाह का एक रूप साली (Sororate) विवाह है। इसके अनुसार विवाह करने वाला व्यक्ति पत्नी की मृत्यु के बाद उसकी बहन से विवाह करता है या अन्य स्त्रियों की तुलना में साली को ज्यादा पसन्द करता है। वैसे कुछ जनजातियों में ऐसे विवाहों में पत्नी की मृत्यु होनी आवश्यक नहीं है। अत: इन विवाहों के दो रूप हैं—**एक**, सीमित साली विवाह, जिसमें व्यक्ति अपनी पत्नी की मृत्यु के बाद या कभी-कभी उसको सन्तान न होने पर उसके जीवित रहते ही उसकी छोटी बहन से भी विवाह कर लेता है (भील जनजाति में यह प्रथा प्रचलित है), और **दूसरा**, असीमित साली विवाह, जिसमें जब व्यक्ति सबसे बड़ी बहन से विवाह करता है तो उसकी सभी छोटी बहनें स्वत: उसकी पत्नियाँ बन जाती हैं। **डॉ० श्यामाचरण दुबे** का मत है कि साली विवाह का कोई निश्चित रूप भारतीय जनजातीय समाज में नहीं है। साधारणत: इसको तीन अर्थों में समझा जा सकता है—**प्रथम**, व्यक्ति का अपनी युवा सालियों से विवाह का अधिकार, **द्वितीय**, व्यक्ति का पत्नी से सन्तुष्ट न होने पर उसकी बहन से विवाह का अधिकार और **तृतीय**, पत्नी की मृत्यु के पश्चात् उसकी बहन से विवाह करने का अधिकार। भारत की अनेक जनजातियों में ऐसे विवाहों को मान्यता दी जाती है।

(v) अन्य अधिमान्य विवाह (Other preferential marriages)—उपर्युक्त चार प्रकार के अधिमान्य विवाहों के अतिरिक्त भी जनजातियों में कुछ वैवाहिक सम्बन्धों को प्रमुखता और मान्यता दी जाती है। भारत की कुछ जनजातियों में विधवा और विधुर विवाह अच्छा समझा जाता है और इसे सामाजिक मान्यता प्राप्त है। सन्थाल जनजाति इसका उदाहरण है। इसके अतिरिक्त गारो जनजाति में यह आवश्यक है कि श्वसुर की मृत्यु के पश्चात् सास का विवाह दामाद के साथ हो। गोंडों में बाबा और पोती तक की पीढ़ी में विवाह हो जाता है। लुशाई पहाड़ों पर रहने वाली लाखेर जनजाति में सौतेली विधवा माता का विवाह पुत्र के साथ किया जाता है।

सेमा नागाओं में भी यही प्रथा है। नाइजीरिया की पैलविक और बूरा जनजातियों में व्यक्ति को अपने दादा की पत्नियाँ उत्तराधिकार में मिल जाती हैं। इन जनजातियों में ऐसे सम्बन्धों को स्वीकार करना सामाजिक दृष्टि से श्रेयस्कर माना जाता है।

जनजातीय विवाह के भेद या प्रकार
(Forms of Tribal Marriage)

जनजातीय समाजों में विवाह के वही भेद हैं जो सभ्य समाजों में पाए जाते हैं। इनमें मुख्य रूप से निम्नलिखित तीन प्रकार के विवाहों का प्रचलन है—

(1) एकविवाह (Monogamy)—सभी सभ्य समाजों में एकविवाह को आदर्श विवाह माना गया है। जब कोई पुरुष एक ही स्त्री से विवाह करता है तो उसे एकविवाह कहते हैं। सामाजिक दृष्टिकोण के साथ-साथ कानूनी दृष्टिकोण में भी एकविवाह ही अधिक मान्य है। भारत में हिन्दुओं के अतिरिक्त अनेक जनजातियों; जैसे खासी, सन्थाल और कादर में एकविवाह ही प्रचलित है।

(2) बहुविवाह (Polygamy)—बहुविवाह से तात्पर्य उस विवाह से है जब एक पुरुष या एक स्त्री, एक से अधिक पत्नी या पति रखते हैं। **मरडॉक** ने अपने 250 समाजों के अध्ययन में अट्ठाईस प्रतिशत परिवारों में इस प्रणाली के प्रचलन का उल्लेख किया है। इसके निम्नलिखित दो प्रमुख प्रकार हैं—

(अ) बहुपत्नी विवाह (Polygyny)—यह प्रकार सार्वभौमिक नहीं है। जब एक पुरुष एक से अधिक स्त्रियों से एक ही समय में विवाह करता है तो यह बहुपत्नी विवाह कहलाता है। हिन्दुओं में 'हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955' के पहले यह प्रथा प्रचलित थी। अनेक भारतीय राजा तथा नवाब लोग बहुपत्नी विवाह के कारण प्रसिद्ध थे। मुसलमानों में बहुपत्नी विवाह आज भी प्रचलित है। अनेक जनजातियों; जैसे भील, बैगा, टोंगा, लुशाई तथा गोंड आदि में भी बहुपत्नी विवाह की प्रथा प्रचलित है। बहुपत्नी विवाह दो प्रकार के होते हैं—

(i) स्वसृक बहुपत्नी प्रथा (Sororal polygyny) तथा

(ii) अस्वसृक बहुपत्नी प्रथा (Non-sororal polygyny)।

प्रथम में एक पति की सभी पत्नियाँ परस्पर बहनें होती हैं। दूसरे में एक पति की समस्त पत्नियाँ आपस में बहनें नहीं होतीं। अधिकतर आदिवासी यह विश्वास करते हैं कि बहुपत्नी विवाह सफल हो सकते हैं यदि सभी पत्नियाँ बहनें हों। यह मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी उचित है। भावात्मक सम्बन्धों के कारण बहनों में परस्पर विश्वासपात्रता बनी रहती है। इस प्रकार, इससे संघर्ष कम हो सकते हैं। इसमें सभी बहनें एक-दूसरे के बच्चों को स्नेह भी करती हैं। इस प्रकार के विवाह अमेरिका में क्राउज व हिण्डासा भारतीयों में पाए जाते रहे हैं।

(ब) बहुपति विवाह (Polyandry)—इस प्रकार के विवाह में एक स्त्री एक ही समय में दो या दो से अधिक पति रखती है। यह प्रथा भी दो प्रकार की होती है—

(i) भ्रातृक बहुपति विवाह (Fraternal polyandry)—इसमें सभी पति सगे भाई होते हैं।

(ii) अभ्रातृक बहुपति विवाह (Non-fraternal polyandry)—इसमें एक स्त्री के पतियों का सगे भाई होना आवश्यक नहीं है।

इस प्रकार के विवाह एस्कीमो में, पूर्वी अफ्रीका के वाहुमाओं में, लद्दाख, तिब्बत, सिक्कम आदि में, टोडा, जौनसार बाबर की खस जनजाति तथा अनेक अन्य जनजातियों जैसे कोटा, कुरुम्बा, तियान आदि में पाए जाते हैं। दूसरे प्रकार के विवाह केरल के नायरों में पाए जाते हैं। इस कारण इसे नायरे प्रकार का विवाह भी कह दिया जाता है।

(3) समूह विवाह (Group Marriage)—इस प्रकार के विवाहों में पुरुषों का एक समूह, स्त्रियों के एक समूह से विवाह करता है। इसमें प्रत्येक पुरुष प्रत्येक स्त्री से यौन सम्बन्ध स्थापित करने में स्वतन्त्र होता है। समूह विवाह जनजातियों में भी पाया जाता रहा है। **ली एवं ली** (Lee and Lee) के अनुसार समूह विवाह से तात्पर्य उस विवाह से है जिसमें एक ही समय में दो या दो से अधिक पुरुष और दो या दो से अधिक स्त्रियाँ परस्पर विवाह करते हैं। **वेस्टरमार्क** का विचार है कि तिब्बत, भारत व लंका में यह विवाह पाया जाता था। आजकल इस प्रकार के विवाह अशोभनीय माने जाते हैं तथा इसीलिए शायद विश्व में अब इस प्रकार के विवाह नहीं पाए जाते हैं।

जनजातियों में जीवनसाथी के चुनाव के तरीके
(Ways of Acquiring Mates among Tribals)

वैसे तो भारतीय सभ्य समाज में भी जीवनसाथी प्राप्त करने के एक से अधिक तरीके प्रचलित हैं। हिन्दुओं में परम्परागत रूप से विवाह के आठ तरीकों का उल्लेख किया गया है। इसी तरह, भारत और संसार की अधिकांश जनजातियों में भी जीवनसाथी प्राप्त करने के एकाधिक तरीके प्रचलित रहे हैं। यह एक तथ्य है कि अलग-अलग जनजातियाँ अलग-अलग तरीकों को मानती हैं। कुछ जनजातियों में एक ही समय में दो-तीन तरीकों को भी सामाजिक मान्यता मिली हुई है। सम्पूर्ण भारतीय जनजातियों में जीवनसाथी चुनने के आठ तरीके प्रचलित हैं, जिन्हें सामाजिक मान्यता प्राप्त है। ये हैं—

(1) क्रय विवाह (Marriage by purchase)—क्रय विवाह साधारणत: भारतीय जनजातियों में प्रचलित है। इसका अर्थ यह नहीं लगाया जाना चाहिए कि इन समाजों में कन्याओं की खरीद या बिक्री की जाती है। केवल भारत में ही नहीं, बल्कि संसार भर की अनेक जनजातियों में लड़की के पिता को निश्चित रकम या वस्तु देने की प्रथा है। इसे वधू-मूल्य (Bride-price) कहा जाता है। यह भारतीय समाज की दहेज प्रथा के विपरीत प्रथा कही जा सकती है। दहेज ही की तरह इसमें भी रकम नकद या उपहारों के रूप में दी जा सकती है। इस विवाह के अन्तर्गत विवाह के इच्छुक लड़के या उसके माता-पिता को, लड़की के माता-पिता को कुछ मूल्य देना पड़ता है। यह विवाह की एक अनिवार्यता है और बिना इसके विवाह नहीं हो सकता। जौनसार बाबर की 'खस' जनजाति में यह मूल्य परम्परा से निश्चित होता है, जबकि 'हो' जनजाति में यह मध्यस्थ द्वारा निश्चित किया जाता है। नाम के स्पष्टीकरण के अनुरूप ही हम इसे वधू का मूल्य मान सकते हैं। परन्तु इसके कारण स्त्रियों की स्थिति गुलामों की तरह नहीं होती वरन् यह एक तरह से स्त्री के प्रति सम्मान का द्योतक कहा जा सकता है। बहुत-से समाजों में यह केवल दिखावे के लिए होता है क्योंकि वधू-मूल्य के रूप में जितना मूल्य लिया जाता है उससे ज्यादा वापस कर दिया जाता है। वैसे कुछ जनजातीय समाजों में इसका एक परिणाम यह भी हुआ है कि वधू-मूल्य के लालच में यदि पिता लड़की का विवाह नहीं करता तो वह जिससे विवाह करना चाहती है उसके घर चली जाती है। मुण्डा जनजाति में ऐसे विवाह को **'अनादेर'** (Intrusion) कहा जाता है। धीरे-धीरे वधू-मूल्य वास्तविक रूप से वधू-क्रय का रूप लेता जा रहा है। जो जनजातियाँ आधुनिक सभ्यता के सम्पर्क में आती जा रही हैं उनमें यह प्रथा समाप्त होती जा रही है। वैसे वधू-मूल्य की यह प्रथा कई विश्वासों पर आधारित है। कुछ जनजातियों में यह कन्या के दूध का मूल्य है, कहीं स्त्री का प्रतिदान है और कहीं यह आर्थिक हानि की पूर्ति पर आधारित है।

इस प्रथा के सम्बन्ध में मानवशास्त्रियों का मत है कि दो परिवारों में आदान-प्रदान के कारण सामाजिक सम्बन्ध अधिक प्रगाढ़ होते हैं। **लॉवी** (Lowie) का मत है कि वधू-क्रय की प्रथा स्त्रियों की उपयोगिता की परिचायक है और इसमें लड़की के माता-पिता को हर्जाने के रूप में मूल्य प्राप्त होता है। जनजातियों में इसका इतना महत्त्व है कि वधू की प्रतिष्ठा भी इसी मूल्य पर आधारित होती है क्योंकि जो वधू जितने ज्यादा मूल्य में प्राप्त होती है वह उतनी ही प्रतिष्ठित माना जाती है। भारत की सन्थाल, उराँव, हो, मुण्डा, गोंड, नागा, कुकी, भील आदि जनजातियों में यह प्रथा अधिक प्रचलित है।

(2) परिवीक्षा विवाह (Probationary marriage)—जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है, इस प्रकार के विवाह में वैवाहिक सम्बन्धों के इच्छुक लड़के और लड़कियों को विवाह से पूर्व ही कुछ समय के लिए साथ रहने की अनुमति दे दी जाती है और अगर उनमें सामंजस्य स्थापित हो जाता है तो विवाह कार्य बाद में सम्पादित हो जाता है। इस विवाह को एक तरह से आधुनिक सभ्य समाजों की कोर्टशिप व्यवस्था के अनुरूप माना जा सकता है। कुछ जनजातियों में यह प्रथा प्रचलित है कि विवाह के इच्छुक लड़के व लड़की को विवाह के पूर्व एक-दूसरे को समझने का मौका प्रदान किया जाना चाहिए। इस अवधि में यौन सम्बन्ध भी स्थापित हो सकते हैं, परन्तु गर्भ धारण कर लेने पर विवाह अनिवार्य हो जाता है, वैसे इसके अभाव में विवाह टूट भी सकते हैं। इस प्रथा का आशय यह है कि अत्यधिक संघर्षमय जीवन में दोनों पहले एक-दूसरे को समझ सकें और विवाह के पश्चात् परस्पर सहयोग कर सकें। परिवीक्षा काल के बाद विवाह हो भी सकता है तथा टूट भी सकता है। भारत की दारलुँग और कुकी जनजातियों में प्रेमी कुछ अवधि तक अपनी प्रेमिका के यहाँ रह सकता है। उस समय वह सम्पूर्ण वैवाहिक सुख का उपभोग कर सकता है। परन्तु यदि बाद में विवाह से इनकार करता है तो

उसे लड़की और माता-पिता को कुछ हर्जाना देना पड़ता है। यह आधुनिक सभ्य समाजों के प्रेम विवाह (Love marriage) का ही एक रूप है। वैसे परिवीक्षा की कोई निश्चित अवधि जनजातियों में निर्धारित नहीं है। **होबेल** (Hoebel) का मत है कि यह प्रथा मुख्यत: सन्तानोत्पत्ति परीक्षा पर आधारित है। जनजातियों में कन्या मूल्य के साथ-साथ सन्तान प्राप्ति की इच्छा भी बड़ी प्रबल है। उसके लिए सन्तानोत्पत्ति आवश्यक है और इसीलिए यह प्रथा जनजातियों में प्रचलित है।

(3) अपहरण विवाह (Marriage by capture)—जनजातीय समाज में यह विवाह का वह रूप है जिसमें वर कन्या को उसकी तथा उसके माता-पिता की इच्छा के विरुद्ध जबरदस्ती ले जाता है और विवाह कर लेता है। यह प्रथा संसार के अनेक भागों में प्रचलित है और आज भारतीय जनजातियों में भी कहीं-कहीं पाई जाती है। बहुत-से मानवशास्त्रियों का मत है कि यह विवाह का सर्वाधिक प्राचीन तरीका है। वर्तमान भारतीय दण्ड संहिता के अनुसार यह विवाह अपराध है। जनजातीय समाजों में ज्यों-ज्यों दण्ड संहिता लागू होती जा रही है, ऐसे विवाह भी कम होते जा रहे हैं। फिर भी नागा, हो, गोंड, बैगा, भील, खरिया, बिरहोर आदि जनजातियों में ऐसे विवाह प्रचलित हैं। इसके दो रूप भारतीय जनजातियों में प्रचलित हैं—एक, **वास्तविक अपहरण** (Physical capture) विवाह और दूसरा, **आभासी या संस्कारात्मक अपहरण** (Ceremonial capture) विवाह।

वास्तविक अपहरण के उदाहरणों में हम असम की नागा जनजाति को सम्मिलित कर सकते हैं जिसमें जब एक गाँव के निवासी दूसरे गाँव पर आक्रमण करते हैं तो स्त्रियों का अपहरण भी करते हैं। यही कारण हैं कि नागाओं में स्त्रियों को मार डालने की प्रथा प्रचलित है। इसके विपरीत, आभासी अपहरण विवाह गोंड जनजाति में पाया जाता है। इसमें लड़की के पिता के अनुरोध पर लड़की का अपहरण किया जाता है। वर पक्ष हरण करता है, वधू पक्ष इसका विरोध करता है, पर यह एक नाटक-मात्र होता है। 'हो' जनजाति में भी अत्यधिक वधू-मूल्य होने के कारण आभासी अपहरण किया जाता है। बिरहोर और खरिया जनजातियों में अपहरण एक संस्कार का रूप ले चुका है। इसमें जब कोई पुरुष सामान्य तरीके से विवाह नहीं कर पाता तो वह स्त्री को सहसा मेले या अन्य किसी भी स्थान में सिन्दूर लगा देता है और उसे उस स्त्री से विवाह का अधिकारी मान लिया जाता है। मध्य भारत की भी कई जनजातियों में त्योहारों के अवसरों पर लड़के उन लड़कियों का अपहरण करते हैं जिनसे वे विवाह करना चाहते हैं। प्राय: अपहरण शान्तिपूर्ण होते है। इसमें अपहरणकर्ता को बिरादरी को हर्जाना या भोज देना पड़ता है। **स्टो** (Stow) ने कई जनजातियों के उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। इसके कारणों की ओर यदि देखें तो नागाओं में लड़कियों की कमी के कारण या अन्य जनजातियों में वधू-मूल्य के कारण, जहाँ सामान्य तरीके से विवाह कठिन है, इस प्रकार के विवाह होते हैं। पुरुष की स्त्रियों पर शासन व्यक्त करने की सामान्य प्रकृति भी इस प्रकार के विवाह के प्रमुख कारण हैं।

(4) परीक्षा विवाह (Marriage by trial)—जनजातीय समाजों में विवाह का चौथा रूप परीक्षा विवाह है जिसमें विवाह के इच्छुक नवयुवकों की शक्ति का परीक्षण किया जाता है। सामान्यत: योग्यता प्रदर्शन इसलिए भी जरूरी है कि इनका जीवन अत्यधिक संघर्षमय है। इन्हें निरन्तर प्राकृतिक शक्तियों से संघर्ष करना पड़ता है और जब इनकी शारीरिक योग्यता की परीक्षा हो जाती है तो यह मान लिया जाता है कि परीक्षा पास करने वाला व्यक्ति परिवार का भार वहन करने योग्य है। भील जनजाति में आभासी अपहरण के साथ-साथ **'गोल गधेड़ो'** विवाह की प्रथा में उम्मीदवार नौजवान लड़के और लड़कियाँ होली के त्योहार में एक पेड़ के पास एकत्र होते हैं। लड़कियाँ पेड़ पर गुड़ या नारियल बाँध देती हैं और पेड़ के आर-पार घेरा बनाकर नृत्य करती हैं। नाचते-नाचते कोई भी लड़का पेड़ पर चढ़ने का प्रयास करता है तो लड़कियाँ उसे रोकती हैं (इसमें कपड़े फाड़ना, चुटकी काटना या झाड़ू से मारना आदि भी सम्मिलित होता है)। यदि इसके बाद भी कोई युवक नारियल या गुड़ को पा लेता है तो वह वहाँ पर एकत्र लड़कियों में से किसी से भी विवाह का अधिकारी हो जाता है। कुछ जनजातियों में भोज आदि के अवसर पर लड़का जिस लड़की से विवाह करना चाहता है उसका हाथ पकड़ लेता है—यह लड़के द्वारा विवाह की इच्छा का संकेत है; और वधू पक्ष के सब रिश्तेदार वर को पीटने लगते हैं। यदि मार खाते हुए भी वर, वधू को न छोड़े तो उसे विवाह के योग्य मान लिया जाता है। कहीं-कहीं वधू को आधार मानकर दोनों पक्षों में रस्साकशी होती है और वर पक्ष जीत जाने पर विवाह का अधिकारी होता है। कुछ अन्य जनजातियों में लड़की के प्रेमी प्रतिद्वन्द्वियों में कुश्ती होती है और जो भी जीत जाता है वह विवाह का हकदार होता है। शिकार के मामले में निपुणता भी कुछ जनजातियों में परीक्षा का आधार है।

(5) सेवा विवाह (Marriage by service)—जनजातियों में प्राय: वधू-मूल्य प्रथा की व्यापकता और अधिक वधू-मूल्य के कारण गरीब जनजातीय व्यक्तियों के लिए विवाह कठिन हो जाता है। इसके हल के लिए अत्यधिक गरीब जनजातियों में वधू और उसके माता-पिता की सेवा करने की प्रथा पाई जाती है। गोंड और बैगा जनजातियों में यदि कोई व्यक्ति वधू-मूल्य चुकाने में असमर्थ होता है तो वह अपने भावी श्वसुर के घर जाकर निश्चित अवधि तक घर का कार्य करते हुए उनकी सेवा करता है और अवधि के बाद विवाह कर वधू के साथ अपने घर वापस आ जाता है। बिरहोर जनजाति में भावी दामाद को वधू-मूल्य उधार के रूप में दे दिया जाता है बदले में दामाद को वधू के घर में रह कर काम करना पड़ता है। इस विवाह प्रणाली को भारत में प्रचलित घरजवाँई प्रथा नहीं मानना चाहिए क्योंकि घरजवाँई प्रथा में लड़की वालों के कोई सन्तान नहीं होती जबकि सेवा विवाह में वर न तो लड़की के माता-पिता की सम्पत्ति का अधिकारी होता है और न ही जीवनपर्यन्त लड़की के घर ही रहता है। सेवा विवाह की इस पद्धति से विवाह के इच्छुक लड़कों को गोंडों में '**लामानाई**' और बैगा में '**लामसेना**' या '**गहारिया**' कहा जाता है। हिमाचल प्रदेश के गुज्जरों में भी यह प्रथा पाई जाती है।

(6) विनिमय विवाह (Marriage by exchange)—वधू-मूल्य की कठिनाई के कारण जनजातियों में विवाह का एक और तरीका प्रचलित है जिसे विनिमय विवाह कहा जाता है। इस पद्धति में वधू-मूल्य की समस्या सुलझाने के लिए बिना कुछ लिए-दिए दो परिवार आपस में लड़कियों को बदल लेते हैं तो वह विनिमय विवाह कहा जाता है। इसमें एक परिवार के लड़के की शादी दूसरे परिवार की लड़की से और उसी दूसरे परिवार के लड़के की शादी पहले परिवार की लड़की से होती है। अन्य शब्दों में, जब दो परिवारों की लड़कियों व लड़कों के विनिमय से विवाह होता है तो इसे विनिमय विवाह कहते हैं। बहुत-सी जनजातियों में क्रॉस कजिन मैरिज को अधिमान्यता है और इनमें विनिमय विवाह सरलतापूर्वक हो जाते हैं। वैसे उपयुक्त वर-वधू के परिवारों की प्राय: कमी रहती है। अत: इस प्रथा का प्रचलन कम ही है। यह प्रथा गोंडों में पाई जाती है। हिन्दू समाज में निम्न जातियों में भी इस प्रथा का प्रचलन रहा है।

(7) सहमति व सहपलायन विवाह (Marriage by mutual consent and elopement)—जनजातियों में जीवनसाथी प्राप्त करने का एक तरीका सहमति और सहपलायन भी है। यह एक प्रकार से प्राचीन भारत के गान्धर्व विवाह और आधुनिक युग के प्रेम विवाह का रूप है। विवाह चूँकि सामाजिक मान्यता प्राप्त बन्धन है इसलिए इसमें व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को कम स्थान मिलता है। उन्मुक्त व्यक्तिगत प्रेम और विवाह परस्पर विरोधी हैं इसलिए वैवाहिक नियमों के उल्लंघन भी प्राय: सब जगह पाए जाते हैं। हम यह कह सकते हैं कि जब दो विषमलिंगी व्यक्ति वैवाहिक नियमों की अवहेलना करते हुए वैवाहिक बन्धन में बँधते हैं और बाद में उनका विवाह समाज द्वारा स्वीकृत हो जाता है, तो उसे सहमति विवाह कहते है। वैवाहिक बन्धन जहाँ सार्वभौमिक है वहीं मर्यादाओं की अवहेलना भी सार्वभौमिक है। परन्तु कुछ जनजातियों में यह मान्यता प्राप्त विधि मानी जाती है। खरिया और हो जनजातियों में विवाह तो माता-पिता द्वारा ही संयोजित होते हैं पर उसके पूर्व वर-वधू की अनुमति आवश्यक रूप से ले ली जाती है। सहपलायन विवाह में इच्छुक वर-वधू भाग जाते हैं और बाद में उनके विवाह को सामाजिक मान्यता मिल जाती है। सहपलायन विवाह में युवक-युवती की सहमति आवश्यक होती है। सहपलायन के और भी दो रूप हैं—एक, **वास्तविक सहपलायन** और दूसरा, **परम्परागत सहपलायन**। वास्तविक सहपलायन में लड़का-लड़की भाग कर कहीं छिप जाते हैं और तब तक सामने नहीं आते जब तक कि उनके वैवाहिक बन्धनों को स्वीकृति न मिल जाए, जबकि परम्परागत सहपलायन में भागने की क्रिया, केवल दिखावे की प्रक्रिया है। कुरनड़ जनजाति में यदि लड़का-लड़की भागते हुए पकड़े जाते हैं तो उन्हें बहुत मारा जाता है। बिहार की 'हो' जनजाति में इस प्रथा को 'राजी-खुशी' कहा जाता है। राजस्थान की भील जनजाति में लड़का यदि अपने गोत्र की लड़की से प्यार करता है तो उसे दूसरे स्थान पर भगा ले जाता है। यद्यपि ऐसे विवाहों को मान्यता तो प्राप्त नहीं है और न ही इनमें कोई सामाजिक संस्कार किए जाते हैं, फिर भी ये विवाह जनजातीय समाज की मर्यादा के अन्तर्गत ही हैं और समाज द्वारा स्वीकृत भी हैं।

(8) हठ विवाह (Marriage by intrusion)—इन विवाहों में विवाह की इच्छुक युवती अपने प्रेमी के घर जबरदस्ती जाकर रहने लगती है और तब तक वहाँ से नहीं हटती जब तक कि वधू के रूप में उसे स्वीकार न कर लिया जाए। भारत की जनजातियों में यह प्रथा बिरहोर, हो, उराँव, कमार, मुण्डा आदि जनजातियों में पाई जाती है। उराँव में इसे '**अनादेर**', कमार में इसे '**पैठू**' तथा सन्थालों में इसे '**निर्बोलव बाप्ला**' कहा जाता है। खरिया जनजाति में लड़की इच्छित लड़के के घर जाकर पत्नी बनाने का तब तक अनुरोध करती है जब तक

उसे स्वीकार न कर लिया जाए। इस प्रथा में लड़की लड़के के माता-पिता की आज्ञा बिना अपने प्रेमी के घर में प्रवेश करती है और एक प्रकार से उन्हें विवाह करने के लिए बाध्य करती है। इसके लिए उसे अनेक अत्याचार, अनादर और अपमान को झेलना पड़ता है। इसलिए भारतीय जनजातियों में इसे विवाह की 'अनादेर प्रथा' भी कहा जाता है। यह कदम (लड़के एवं लड़की द्वारा) इस बात का भी परिचायक है कि उन्हें प्रेम हो गया है और उसके लिए वह हर तरह का अपमान झेलने को तैयार हैं तथा अन्य तरीके से वह विवाह नहीं हो पा रहा है और साथ ही वे लोग सहपलायन में भी असमर्थ हैं। इन अवस्थाओं में केवल हठ करने के सिवा उनके पास कोई दूसरा मार्ग नहीं है।

उपर्युक्त जीवनसाथी के चुनाव के तरीके प्राय: जनजातियों में प्रचलित हैं और ये प्राचीन भारत की विवाह पद्धति के पूर्णत: अनुरूप हैं। यह अवश्य है कि हिन्दू विचारधारा के विकास-क्रम में जनजातीय विवाहों के तरीकों को अवांछनीय मानने का प्रयास किया गया है। आसुर विवाहों में कन्या मूल्य दिया जाता है, गान्धर्व विवाह सहमति और सहपलायन है, राक्षस तथा पैशाच विवाह अपहरण विवाह हैं। जनजातीय मान्यताओं में विवाह परस्पर समझौता है; न तो यह आजीवन का नाता है और न ही धार्मिक संस्कार। इस कारण उनमें कई पद्धतियाँ पाई जाती हैं। इनमें विवाह का आर्थिक और सामाजिक पक्ष धार्मिक पक्ष से ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। इसीलिए संस्कारों की अधिकता और जटिलता भी इनमें नहीं मिलती। सभी वैवाहिक प्रकार उनके जीवन-पद्धति और पर्यावरण से सम्बन्धित हैं। परिवीक्षा विवाह यौन सम्बन्धों के ढीलेपन, विनिमय विवाह सीमित क्षेत्र, अपहरण और सहपलायन वधू-मूल्य की अधिकता तथा सेवा और क्रय विवाह आर्थिक आधारों का परिचय देते हैं। सभ्य समाजों के सम्पर्क के कारण आज विवाह के इन स्वरूपों में परिवर्तन भी आते जा रहे हैं और जो जनजातियाँ हिन्दू संस्कृति के अधिक सम्पर्क में आती जा रही हैं, उनमें विवाह का आर्थिक पक्ष महत्त्वपूर्ण होता जा रहा है। जैसे—हो जनजाति में संस्कारों की दृष्टि से **'अन्दी'** और **'दिक्कू अन्दी'** विवाह पाए जाते हैं। दिक्कू अन्दी विवाह अग्नि को साक्षी मानकर सम्पादित होते हैं, जबकि अन्दी में केवल जनजातीय देवताओं की स्तुति की जाती है और बलि चढ़ाई जाती है। अन्दी विवाह स्थानीय पुरोहित सम्पादित करता है, जबकि दिक्कू अन्दी विवाह हिन्दू विवाह की तरह सम्पादित होता है।

जनजातीय समाज में तलाक
(Divorce in Tribal Society)

मानवीय समाज में परिवार एक अनिवार्य आवश्यकता है और विवाह परिवार-निर्माण का एक प्रमुख आधार है। इसलिए प्राय: प्रत्येक समाज में वैवाहिक सम्बन्धों को स्थायी बनाने का प्रयास किया जाता है और इसके लिए नियमों एवं उपनियमों की व्यवस्था बनाई जाती है। परन्तु इसके साथ-ही-साथ प्रत्येक समाज में असफल वैवाहिक सम्बन्धों को समाप्त करने के लिए कोई-न-कोई रास्ता निकाल लिया जाता है। वह रास्ता सरल हो या कठिन, पर होगा अवश्य। साथ-ही-साथ किसी भी समाज में वह रास्ता, जो वैवाहिक सम्बन्धों को भंग कर देता है, न तो अच्छी दृष्टि से देखा जाता है, न सिद्धान्त रूप में स्वीकृत होता है और न ही कोई समाज ऐसी व्यवस्थाओं को प्रोत्साहित करता है। कुछ भारतीय जनजातियों में भी यह मान्यता प्रचलित है कि वैवाहिक सम्बन्धों को अनावश्यक रूप से संघर्षमय बनाने के बजाय उसे समाप्त कर दिया जाना अधिक अच्छा है। यही तलाक है। जनजातियाँ वैवाहिक सम्बन्धों को न टूटने वाला धार्मिक बन्धन नहीं मानतीं वरन् यह उनके लिए समाजीकृत समझौता-मात्र है। आदिवासियों में सामान्यत: तलाक आसानी से हो जाता है। असम की खासी जनजाति में परस्त्री या परपुरुष-गमन और स्त्री के बाँझपन के आधार पर तलाक हो सकता है। गोंडों में भी यदि स्त्री परपुरुष-गामिनी है, गृहस्थी के कार्यों के प्रति उदासीन है या झगड़ालू स्वभाव की है तो उसे तलाक दिया जा सकता है। यही आधार खरिया जनजाति में भी है। यदि ग्राम पंचायत किसी स्त्री को **'डायन'** या **'टोनही'** घोषित कर देती है तो पति के लिए तलाक देना आवश्यक हो जाता है। यह कहा जा सकता है कि भारतीय जनजातियों में इन सभी कारणों से तलाक हो जाता है जिनमें पति-पत्नी वैवाहिक समझौते को चलाने में असमर्थ होते हैं। तलाक देने का अधिकार स्त्री-पुरुष दोनों को है तथा इसके अधिकांश निर्णय पंचायत द्वारा किए जाते हैं। परन्तु अधिकतर मामलों में तलाक की अनुमति तभी दी जाती है जब दोनों पक्ष तलाक के पक्ष में हों। साधारणत: जो पक्ष तलाक की माँग करता है उसे दूसरे पक्ष को हर्जाना देना पड़ता है। लुशाई जनजाति में यदि पति, पत्नी को तलाक देता है तो उसे वधू-मूल्य की रकम वापस देनी पड़ती है। साधारणत: तलाक के बाद

बच्चों पर स्त्री का अधिकार होता है (जैसे खासी जनजाति में) अन्यथा बच्चों पर अधिकार परस्पर समझौते द्वारा निश्चित होता है। जनजातियों में पुनर्विवाह में कठिनाई नहीं होती, न ही उसे अवांछनीय समझा जाता है। सन्थाल, थारू, भील, गोंड आदि जनजातियों में तलाक के मामले में पुरुष की स्थिति बहुत अच्छी है। ग्रामीण एवं नगरीय समाजों की अपेक्षा जनजातीय समाज में अधिक विवाह-विच्छेद होता है। उनमें इस आधार पर पारिवारिक विघटन भी नहीं होता और न ही इसकी कोई समस्या है। परन्तु फिर भी, विवाह-विच्छेद को किसी भी आदिम समाज में प्रोत्साहित नहीं किया जाता।